भूमिका

लीजिये यह 'केशव' की रामचंद्रिका का संक्षिप्तरूप उपस्थित है। इसे संकलन करने में विशेष विचार इन बातों का रक्खा गया है—(१) कोई उत्तमांश छूटने न पावे, (२) अनावश्यक, कम आवश्यक और कठिन अंश छोड़ दिये जावें, (३) यथासंभव सरस और सरल अंश अवश्य लिये जावें, (४) जिनके पढ़ने पढ़ाने में अथवा किसी को समझाने में संकोच हो ऐसे अंश सरल और सरस होने पर भी छोड़ दिये जावें और (५) यथासंभव वर्णित विषयों का क्रम भी भंग न होने पावे। इन सब कारणों से इस काव्य का बहुत ही थोड़ा अंश छुटने पाया है।

इन उपरोक्त विचारों सहित यह संग्रह प्रस्तुत किया गया है। कुछ त्रुटियां हो जाना संभव ही है, क्योंकि मनुष्य की बुद्धि निर्भ्रांत हो ही नहीं सकती। हम भी मनुष्य ही हैं। अतएव पाठकों से निवेदन है कि उन्हें जहां कहीं कोई त्रुटि जान पड़े, वे कृपा करके सभा के मंत्री को उस त्रुटि की सूचना दें। हमें पूर्ण आशा है कि मंत्री महाशय उनकी सूचना पर विशेष ध्यान देकर उस त्रुटि को आगामी संस्करण में संशोधन कराने का उद्योग अवश्य करेंगे।

केशव बुंदेलखंड के निवासी थे। अतएव इस कविता में सहज भाव से ही कुछ ऐसे ठेठ बुंदेलखंडी शब्द आ गए हैं

जिनका अर्थ अन्य प्रांत निवासी नहीं समझ सकते। यथा-संभव ऐसे शब्दों के अर्थ पाद टिप्पनियों में दिए गए हैं।

केशव की कविता कठिनता के लिये प्रसिद्ध है। अलंकारों से परिपूर्ण है। श्लेष अलंकारों की भरमार है। किसी किसी छंद में भिन्न पद श्लेष की ऐसी कठिन योजना है कि पदच्छेद करना सरल काम नहीं है। हमने यथाशक्ति पदच्छेद करने में अपनी सतर्क बुद्धि से काम लिया है। पर तो भी बहुत संभव है कि हमसे बहुत सी अशुद्धियां हुई हों। इस लिये पाठकों से क्षमा के प्रार्थी हैं। पाठकों को चाहिये कि ऐसे छंदों के पढ़ने में अपनी सतर्क बुद्धि से भी कुछ काम लें, केवल हमारे ही पदच्छेद पर पाठ को निर्भर न रक्खें।

रामचंद्रिका के इस संग्रह में हमने एक विशेष परिवर्तन किया है। 'केशव' ने कथाप्रसंग को 'प्रकाशों' में विभक्त किया है। हमने प्रकाशों को हटाकर तुलसीकृत रामायण के क्रम की भांति संपूर्ण कथाप्रसंग को कांड क्रम से रक्खा है। इसका कारण यही है कि आजकल के पाठक और सर्व-साधारण श्रोता इसी क्रम से अधिक परिचित हैं और इसीको पसंद भी करते हैं।

केशव की रामचंद्रिका पर कई टीकाएं हैं और अच्छी हैं। पर दोष उनमें यह है कि वे प्राचीन ढंग की हैं। नवीन ढंग के प्रेमी पाठकगण ऐसी टीका से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। काव्य की कठिनता तथा टीकाओं के अभाव से

केशव की उत्तम कविता का पठन पाठन प्रायः लुप्त सा हो गया है। इस काव्य के समझनेवाले तथा पढ़ानेवाले ढूंढे नहीं मिलते। यदि हैं भी तो इने गिने। इस काव्य के पठन पाठन के लोप हो जाने से हिंदी साहित्य की बड़ी भारी हानि हो सकती है। इसलिये हम हिंदी साहित्य प्रेमियों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहते हैं कि केशव की कविता का प्रचार बढ़ाया जाय और प्रचार तभी बढ़ सकता है जब इन ग्रंथों पर सरल भाषा में नवीन ढंग की टीकाएँ रची जायँ। बिहारी और तुलसी की कविता की अनेक टीकाएँ हो जायँ और केशव ऐसे धुरंधर कवि के ग्रंथों की कोई खबर ही न ले, यह कैसे आश्चर्य की बात है। केवल आश्चर्य ही क्यों, हिंदीवालों के लिये निंदा की भी बात है। अस्तु हिंदी प्रेमियों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

रंगपंचमी
सं० १९७९, काशी।

विनीत—
भगवानदीन, संग्रहकर्ता

केशवदास का परिचय

केशवदासजी ओड़छानिवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। "शीघ्रबोध" नामक ज्योतिष-ग्रंथ के बनानेवाले पंडित काशीनाथजी इनके पिता थे। शिखनखवाले प्रसिद्ध कवि 'बलभद्र' इनके बड़े भाई थे और ऊटपटांग कविता करने वाले कल्याणदास इनके छोटे भाई थे। कहने का तात्पर्य यह कि इनका घर भर कवि, कविताप्रेमी और विद्वान था। केशव ने अपने ग्रंथों में अपना पूर्ण परिचय भली भांति लिखा है। कविप्रिया ग्रंथ में अपना परिचय देते हुए अपने आश्रय-दाता राजा तथा उनके समाज का भी पूर्ण परिचय दिया है। रामचंद्रिका में ब्राह्मणों, और विशेष कर सनाढ्य ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा की है और बड़ा माहात्म्य गाया है। बुंदेलखंड में कहीं कहीं इनके वंशधर अब तक पाए जाते हैं।

केशव का जन्म, संवत १५६४ में हुआ था। इनके बनाये पांच ग्रंथ हमने देखे हैं अर्थात् (१) रसिकप्रिया (सं० १६४८), (२) रामचंद्रिका (सं० १६५८), (३) कविप्रिया (सं० १६५८), (४) विज्ञान गीता (सं० १६६७) (५) वीरसिंहदेव चरित्र (सं० १६६४)।

केशवदासजी केवल ओड़छानरेश के दर्बार कवि वा मंत्रगुरु ही न थे, वरन उनके मंत्री और मुसाहेब भी थे।

ज्योतिषी और पुरोहित का भी काम करते थे। कई एक किंवदंतियों से यह भी प्रगट होता है कि केशवदासजी अश्वारोहण और शस्त्रसंचालन में भी कुशल थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राजाओं के निकटवर्ती लोगों को प्रायः सबही प्रकार की कुशलता दर्कार हुआ करती है, और वे लोग सब बातों में कुशल होते भी हैं। चंद बरदाई भी तो पृथ्वीराज के सामंतों में गिना जाता था। वह भी तो दर्बार कवि ही था।

एक बार अकबर ने ओड़छा दर्बार पर एक करोड़ रुपया जुर्माना किया था। उस जुर्माने को माफ कराने के लिये केशवदास आगरे भेजे गये थे। केशव ने अपनी काव्यकुशलता से बीरबर को और नीतिकुशलता तथा सभाचातुरी से अकबर को प्रसन्न करके वह जुर्माना माफ ही करा लिया था। इस कार्य के उपलक्ष में ओड़छा दर्बार से केशवदास को जागीर मिली थी जो बहुत दिनों तक उनके वंशज भोगते रहे। अब क्या हाल है सो हम नहीं कह सकते।

ओड़छानरेश मधुकरशाहजी के सबसे बड़े पुत्र रामशाह थे। इन्होंने कुछ दिन ओड़छा में राज्य किया। तदनंतर चंदेरी में जा बसे और ओड़छा का राज्यभार अपने छोटे भाई बीरसिंहदेव के सिर छोड़ा। बीरसिंहदेव बड़े युद्धप्रिय व्यक्ति थे। इसी कारण बहुधा राजधानी से बाहर ही रहा करते थे। राज्यकाज भी भली भाँति न देख सकते थे। इस कारण राज्य-

काज सँभालने का भार इन्होंने अपने छोटे भाई इंद्रजीत पर छोड़ा था। इन्हीं इंद्रजीत के दर्बार में केशवदास ने बड़ा सम्मान पाया था।

सुनते हैं रामशाह जी के लिये केशव ने "राम-अलंकृत मंजरी" नामक एक ग्रंथ अलग ही बनाया था, पर हमें उस ग्रंथ के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मधुकरशाह का सबसे छोटा पुत्र कुँ० रतनसिंह था। मधुकरशाह के जीवन-काल ही में इस वीर बालक ने केवल १६ वर्ष की अवस्था में अकबर की सेना से युद्ध किया था। यद्यपि यह बालक उस युद्ध में मारा गया, पर उसने वीरता अच्छी दिखलाई थी। इसी कुँवर रतनसिंह की वीरता की प्रशंसा में, सुनते हैं, केशवदास ने "रतनबावनी" नामक ५२ छंदों की एक छोटी सी पुस्तक रची है। परंतु इस पुस्तक को भी हमने नहीं देखा। तात्पर्य यह कि केशव के रचे हुए ७ ग्रंथों का पता चलता है, जिनमें से पहले कहे हुए पांच तो छप चुके हैं और अंतिम दो अभी तक अप्रकाशित हैं। शायद बुँदेलखंड में उनकी हस्त-लिखित प्रतियां मिल सकें। हमने सुना है कि ओड़छा के राज्य पुस्तकालय में इन दोनों ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां मौजूद हैं। अनुमान होता है कि इसी 'रतनबावनी' को देखकर भूषण कवि ने "शिवाबावनी" का रचना की होगी।

ऐसा प्रसिद्ध है कि तुलसीदास जी के जीवनकाल ही में केशव की मृत्यु हो चुकी थी। केशव ने सं० १६६७ में विज्ञान

गीता बनाई। तुलसीदास की मृत्यु सं० १६८० में हुई, अतएव अनुमान सिद्ध है कि सं० १६६७ और १६८० के बीच में किसी वर्ष केशव की मृत्यु हुई होगी। इस अनुमान से सिद्ध है कि केशवदास ने कम से कम ७५ वर्ष की आयु भोगी होगी।

केशव की कविता पर कुछ विचार प्रकट करना केवल पृष्टपेषण ही होगा, क्योंकि इस विषय में मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में विस्तृत समालोचना की है, उससे अधिक हम और क्या लिखेंगे; पर हां इतना अवश्य कहेंगे कि जिन पाठकों को कविता से रुचि हो वे केशव के ग्रंथ अवश्य देखें। प्रथम तीन ग्रंथों को पूर्णतः समझ लेने से फिर कोई भी काव्य ग्रंथ कठिन नहीं रह सकता।

जो लोग हिंदी-भाषा को भाषा ही नहीं समझते और कहते हैं कि हिंदी के शब्दों में मनोभाव प्रगट करने की शक्ति बहुत ही अल्प है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे केशव के ग्रंथ पढ़ें और देखें कि इस भाषा में क्या चमत्कार है। जिस भाषा वाले को अपनी भाषा की समृद्धि और पूर्णता का अहंकार हो वह उस भाषा का सर्वोत्तम छंद लेकर केशव के चुनिंदा छंदों से मिलान करे तो मालूम हो जायगा कि उसकी भाषा हिंदी भाषा के सामने तुच्छातितुच्छ है। क्या किसी भाषा का कवि अपने किसी छंद के चार चार और पांच पांच तरह के शब्दार्थ लगा सकता है? केशव की कविता में ऐसे छंद बहुत हैं जिनका अर्थ तीन तीन तरह से होता है। इतना

ही नहीं, कुछ छंद ऐसे भी हैं जिनका शब्दार्थ पांच पांच तरह का होता है। इसी कठिनता के कारण लोग केशव की कविता कम पढ़ते हैं। हम दावे और अहंकार के साथ कह सकते हैं कि केशव ने हिंदी को वह गौरव प्रदान किया है जो आजतक अन्य किसी भाषा को नहीं प्राप्त हो सका। जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर अपनी गंभीरता के हेतु सराहनीय हैं, वैसे ही वरन् उससे भी बढ़कर केशव अपनी भाषा की परिपुष्टता के लिये प्रशंसनीय हैं।

रामचंद्रिका

कांड-सूची

रामचन्द्रिका

बाल कांड

गणेश-वंदना

[मनहरण छन्द]

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल-दीह-दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक-ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।
दूरि कै कलंक-अंक भवशीश शशि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुष को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को॥ १॥

सरस्वती वंदना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध-सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न केहूँ लई।
भावी भूत वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूं न बखानी काहू पै गई।

बरणै पति चारिमुख पूत बरणै पाँच मुख,
नाती बरणै षट मुख, तदपि नई नई ॥ २ ॥

राम वंदना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझैं न,
नेति नेति कहै वेद छाँड़ि भेद युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनिरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ॥ ३ ॥

कवि परिचय

[सुगीतछंद]

सनाढ्य जाति गुनाढ्य हैं जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव।
कृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि, मिश्र पंडितराव।
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारिकै जिन जानियो मत साध ॥ ४ ॥

[दोहा]

उपज्यो तेहि कुल मंदमति, शठकवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, भाषा करी प्रकाश ॥ ५ ॥
सोरह सै अट्ठावने, कातिकसुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीन्हों अवतार ॥ ६ ॥

ाम महिमा

[षट्पद]

बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीन्हों।
मारि न मार्‍यो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी।
दान सत्य सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।
मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशवदास भणि।
सोइ परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतार मणि॥ ७॥

[चतुष्पदी छंद]

जिनको यज्ञ-हंसा जगत प्रशंसा, मुनिजन-मानस रंता।
लोचन अनुरूपनि श्याम स्वरूपनि अंजन अंजित संता।
कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलम्ब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै।८॥

[दोहा]

जागति जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छंद।
रामचंद्रकी चन्द्रिका, बरणत हौं बहुछंद॥ ९॥

[रोला छंद]

शुभ सूरजकुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति।
तिनके सुत भये चारि चतुर चितचारु चारुमति।
रामचन्द्र भुवचन्द्र, भरत भारतभुव-भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण॥ १०॥

[घत्ता छन्द]

सरयू सरिता तट नगर बसै। अवधनाम यश धाम घर।
अघओघ विनाशी सब पुरवासी अमरलोक मानहुँ नगर ॥११॥

विश्वामित्र आगमन

[षटपद्]

गाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल।
दान कृपान विधान, वश्य कीन्हों भुवमंडल।
कै मन अपने हाथ, जीति, जग इन्द्रियगन अति।
तप बल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति।
तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल-अतीतागतनि गुनि।
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि॥ १२ ॥

सरजू वर्णन

[प्रज्झटिका छन्द]

पुनि आये सरयू सरित तीर।
तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर।
नव निरखि निरखि द्युति गति गँभीर।
कछु वरणन लागे सुमति धीर ॥ १३ ॥
अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
यह देत शुद्ध गति छुवत आप।
कछु आपुन अध-अध गति चलन्ति।
फल पतितन कहँ ऊरध फलन्ति ॥ १४ ॥

मदमत्त यदपि मातंग संग।
अति तदपि पतितपावन तरंग।
बहु न्हाइ न्हाइ जेहि जल सनेह।
सब जात स्वर्ग सूकर सुदेह॥ १५॥

गजशाला वर्णन

[नवपदी छंद]

जहँ तहँ लसत महामदमत्त। वर बारन वार न दल दत्त।
अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय वंदन॥१६॥

[दोहा]

दीह दीह दिग्गजन के, केशव मनहुँ कुमार।
दीन्हे राजा दशरथहिं, दिगपालन उपहार॥ १७॥

बाग वर्णन

[अरिल्ल छंद]

देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रतिकी सखी सुवेषनि।
मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि॥ १८॥
फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत।
मोदत महा मोद उपजावत।
उड़त पराग न चित्त उड़ावत।
भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत॥ १९॥

[पादाकुलक छंद]

शुभ सर शोभै। मुनिमन लोभै।
सरसिज फूले। अलि रस भूले॥
जलचर डोलैं। बहुखग बोलैं।
बरणि न जाहीं। उर अरुझाहीं॥२०॥

[हाकलिका छंद]

संग लिये ऋषि शिष्यन घने। पावक से तपतेजनि सने।
देखत सरिता उपवन भले। देखन अवधपुरी कहँ चले॥२१॥

अवधपुरी वर्णन

[मधुभार छंद]

ऊंचे अवास। बहु ध्वज प्रकास।
शोभा विलास। शोभै अकास॥२२॥

[आभीर छन्द]

अति सुन्दर अति साधु। थिर न रहत पल आधु
परम तपोमय मानि। दण्ड धारिनी जानि।

[हरिगीत छन्द]

शुभद्रोण गिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी ग
बहु बायु बश बारिद बहोरहिं अरुझि-दामिनि-द्युति म
अति किधौं रुचिर प्रताप-पावक प्रगट सुरपुर को च
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलति भली॥

[दोहा]

जीतिजीति कीरति लई, शत्रुनको बहुँभाँति।
धुर पर बाँधी शोभिजै, मानो तिनकी पाँति ॥ २५ ॥

[त्रिभंगी छन्द]

सम सब घर शोभैं मुनि मन लोभैं,
रिपुगण छोभैं देखि सबैं।
बहु दुंदुभि बाजैं जनु घन गाजैं,
दिग्गज लाजैं सुनत जबैं ॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं विघन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं सकल दिशा।
सबई सब विधि छम बसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा ॥ २६ ॥

[दंडकला छंद]

कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राजराज वर वेष बने।
गणपति सुखदायक पशुपति लायक सूर सहायक कौन गने।
सेनापति बुधजन मंगल गुरु गण धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी ॥२७॥

[हीरक छन्द]

पंडितगण मंडितगुण दंडित-मति देखिये।
क्षत्रिय वर धर्म प्रवर क्रुद्ध समर लेखिये।
वैश्य सहित सत्य रहित पाप प्रगट मानिये।
शूद्र सुकति विप्र भगति जीव जगत जानिये ॥ २८ ॥

[सिंहविलोकित छंद]

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो।
कछु बुधिबल बचन न जाइ कह्यो।
पशु पक्षि नारि नर निरखि तबै।
दिन रामचन्द्र गुण गनत सबै॥ २६॥

[मरहट्टा छन्द]

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि।
बहु सत मख धूमनि धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारि।
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि।
जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि॥३०॥

[सोरठा]

जग यशवन्त विशाल, राजा दशरथ की पुरी॥
चंद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईशकी॥ ३१॥

[कुंडलिया]

पंडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ़।
सिंहन युत जनु चंडिका, मोहति मूढ़ अमूढ़॥
मोहति मूढ़ अमूढ़, देव सँग अदिति सी सोहै।
सब शृंगार सदेह, मनो रति मन्मथ मोहै॥
सब शृंगार सदेह सकल सुख सुखमा मंडित।
मनो शची विधि रची विविधि विधि बरणत पंडित॥

[काव्य छंद]

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय।
होमहु ताशनधूम नगर एकै मलिनाइय॥

दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिलगति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कविकुल के जीमें ॥ ३३ ॥

[दोहा]

अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्भुतनगर निहारि ॥ ३४ ॥

[सोरठा]

नागर नगर अपार, महामोहतम मित्र से।
तृष्णालता कुठार, लोभसमुद्र अगस्त्य से ॥ ३५ ॥

[दोहा]

विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धिउदार।
देखत शोभा नगर की, गये राजदरबार ॥ ३६ ॥
शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसै, देवदेव अनुरूप ॥ ३७ ॥
देखि तिन्हैं तब दूर ते, गुदरानो[1] प्रतिहार।
आये विश्वामित्रजू, जनु दूजो करतार ॥ ३८ ॥
उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन, ज्यों सुरगुरु सुरराइ ॥ ३९ ॥

[सोरठा]

सभा मध्य बैताल,[2] ताहि समय सो पढ़िउठ्यो।
केशव बुद्धि विशाल, सुंदर सूरो भूप सो ॥ ४० ॥

१—गुदरानो=निवेदन किया। २—बैताल=भाट, बंदी।

[घनाक्षरी]

चैताल—विध के समान हैं विमानीकृत राजहंस,
विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातों दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है।
सागर उजागर को बहु वाहिनी को पति,
छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथपथगामी गंगा कैसो जल है॥

[दोहा।]

यद्यपि ईंधन जरि गये, अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के, पल पल बढ़त प्रकाश॥ ४२॥

[तोमर छन्द]

बहु भाँति पूजि सुराइ। कर जोरिकै परे पाइ॥
हँसिकै कह्यो ऋषिमित्र। अब बैठ राजपवित्र॥४३॥
मुनि—सुनु दानमानसहंस। रघुवंश के अवतंस॥
मन माँह जो अति नेहु। यकु बात माँगे देहु॥४४॥

[दोधक छंद]

राम गये जबतें बन माहीं। राक्षस बैर करैं बहुधाहीं॥
रामकुमार हमैं नृप दीजै। तौ परिपूरण यज्ञ करीजै॥४५॥

[तोटक छंद]

यह बात सुनी नृप नाथ जबै।
शर से लगे आखर चित्त सबै।
मुख ते कछु बात न जाइ कही।
अपराध बिना ऋषि देह दही॥ ४६॥

राजा—अति कोमल केशव बालकता।
बहु दुष्कर राक्षस घालकता।
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै।
सजि सैन चलै चतुरंग सबै॥ ४७॥

विश्वामित्र— [षट्पद]

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणीरिपु-नन्दनि।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयन्दनि।
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि।
तिन बाणनि बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि।
नृपनाथनाथ दशरथ सुनिय अकथ कथा यह मानिये।
मृगराजराजकुलकलश अब बालक वृद्ध न जानिये॥ ४८॥

[मोदक छंद]

राजा—मैं जो कह्यो ऋषि देन सो लीजिय।
काज करो हठ भूलि न कीजिय॥
प्राण दिये धन जाहिं दिये सब।
केशव राम न जाहिं दिये अब॥ ४९॥

ऋषि—राज तज्यो धन धाम तज्यो सब।
नारि तजी सुत शोच तज्यो तब॥

आपनपौ जो तज्यौ जगवंद है।
सत्य न एक तज्यौ हरिचंद है॥ ५० ॥

[दोहा]

जान्यो विश्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आइ।
राजा दशरथ सों कह्यो, बचन वशिष्ठ बनाइ॥ ५१ ॥

वशिष्ठ— [षटपद]

इनहीं के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षस बल हरिहैं॥
इनही के तपतेज तेज बढ़िहै तन तूरण।
इनही के तपतेज होहिंगे मंगल पूरण।
कहि केशव जैयुत आइहैं इनही के तपतेज घर।
नृप बेगि राम लक्ष्मण दोऊ सौंपो विश्वामित्र कर॥ ५२ ॥

[दोहा]

नृप पै बचन वशिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचन्द्र अकुलाइ॥ ५३ ॥

[पंकजवाटिका छंद]

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारिभरित भये वारिदरोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥ ५४ ॥

[चामर छन्द]

वेद मंत्र तंत्र शोधि अस्त्र शस्त्र दे भले।
रामचन्द्र लक्ष्मणै सो विप्र छिप्र लैचले।
लोभ छोभ मोह गर्व काम कामना हुई।
नींद भूख प्यास त्रास वासना सबै गई॥ ५५ ॥

[निशिपालिका छन्द]

कामवन राम सब वास तरु देखियो।
नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो।
ईश जहँ कामतनु कै अतनु डारियो।
छोड़ि वह यक्षथल केशव निहारियो॥ ५६ ॥

[दोहा]

रामचंद्र लक्ष्मण सहित, तन मन अति सुख पाइ।
देख्यो विश्वामित्र को, परम तपोवन जाइ॥५७॥

तपोवन वर्णन

[षट्पद]

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन॥५८॥

[सुप्रिया छंद]

कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुति पढ़हीं।
कहुँ हरिहरि हरहर रट रटहीं।
कहुँ मृगपति मृगशिशु पय पियहीं।
कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियहीं ॥ ५६ ॥

[नराच छंद]

विचारमान ब्रह्म देव अर्चमान मानिये।
अदीयमान दुःख सुख दीयमान जानिये।
अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।
अपट्ठमान पापग्रन्थ पट्ठमान वेदवै ॥ ६० ॥

[चंचला]

किये को यज्ञथल बैठे वीर सावधान।
न लागे होम के जहां तहां सवै विधान।
भीममाँति ताड़का सो भंग लागि कर्न आइ।
बान तानि राम पै न नारि जानि छाँड़ि जाइ ॥ ६१ ॥

[सोरठा]

ऋषि—कर्म करति यह घोर, विघ्न की दशहू दिशा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँड़िये ॥ ६२ ॥

[दोहा]

द्विजदोषी न विचारिये, कहा पुरुष कह नारि।
राम विराम न कीजिये, बाम ताड़का तारि ॥ ६३ ॥

ताड़का सुबाहु बध

[मरहट्टा छंद]

यह सुनि गुरुवानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि।
ताड़का सँहारी दारुण भारी नारी अति बल जानि॥
मारीच विडार्‌यो जलधि उतार्‌यो मार्‌यो सबल सुबाहु।
देवनि गुन पर्‌यों पुष्पनि वर्‌ष्यो हर्‌ष्यो अति सुरनाहु॥ ६४॥

[दोहा]

पूरण यज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र।
धनुषयज्ञ को शुभ कथा, लागे सुनन विचित्र॥ ६५॥

विप्र कथित स्वयंवर कथा

[दोहा]

खण्डपरस[1] को शोभिजै, सभामध्य कोदंड।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार वरिवंड॥ ६६॥

[सवैया]

शोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनौ वसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों[2] जनु देवसभा शुभ सीयस्वयम्वर देखन आई।६७॥

॥ सोरठा ॥

सभामध्य गुणग्राम, बंदी सुत द्वै शोभहीं।
सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करैं॥ ६८॥

---

१ खण्ड परस=महादेव। २ स्यों=सहित।

[दोहा]

सुमति—को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु विशाल ।
सुरभि[1] स्वयंवर जनु करी, मुकुलित शाख रसाल ॥६९॥

[सोरठा]

विमति—ज्यहि यशपरिमल मत्त, चंचरीक चारण फिरत ।
दिशि विदिशन अनुरक्त, सो तौ मलिकापीड़ नृप ॥७०॥

[दोहा]

सुमति—जाके सुखमुख[2] वास ते, वासित होत दिगंत ।
सो पुनि कहु यह कौन नृप, शोभित शोभ अनंत ॥७१॥

[सोरठा]

विमति—[3]राजराजदिगधाम, भाल लाल लोभी सदा ।
अति प्रसिद्ध जग नाम, काश्मीर को तिलक यहाँ ७२।

[दोहा]

सुमति—निज प्रताप दिनकर करत, लोचन कमल प्रकाश ।
पान खात मुसुकात मृदु, को यह केशवदास ॥७३॥

[सोरठा]

विमति—नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावती ।
कटितट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई ॥७४॥

---

१ सुरभि=वसंत । २ सुखमुख=उदय । ३ राजराज=कुबेर ।

[दोहा]

सुमति—कुण्डल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज।
शंभुशरासन गुन करों, करनालम्बित आज॥७५॥

[सोरठा]

विमति—जानहिं बुद्धिनिधान, मत्स्यराज यहि राज को।
समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि कै॥७६॥

[दोहा]

समति—अंगराग रंजित रुचिर, भूषण भूषित देह।
कहत विदूषक सों कछू, सो पुनि को नृप येह॥७७॥

[सोरठा]

विमति—चन्दनचित्रित रंग, सिंधुराज यह जानिये।
बहुत वाहिनी संग, मुक्तामाल विशाल उर॥ ७८॥

[दोहा]

सिगरे राज समाज के, कहे गोत्र गुण ग्राम।
देश सुभाव प्रभाव अरु, कुल बल विक्रम नाम॥ ७६॥

[घनाक्षरी]

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताये हैं।
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कोने गुण पाये हैं।

सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥ ८० ॥

[विजय]

दिकपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
ठाढ़ भये उठि आसन ते कहि केशव शम्भुशरासन को छ्वै।
काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आँगुरहू द्वै।
स्वारथ भो न भयो परमारथ आये हैं बीर चले बनिता ह्वै ॥८१॥

रामचन्द्र का जनकपुर में आगमन

[दोहा]

काहू को न भयो कहूं, ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्दोत ॥ ८२ ॥

सूर्योदय वर्णन

राम— [चौपाई]

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवतचित्तकुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता सो लसै ॥८३॥

[षटपद]

लक्ष्मण—अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय।
मानहु केशवदास कोकनद कोकप्रेममय।
परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूपपट ॥
कै श्रोणितकलित कपाल यह किल कपालिका काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥८४॥

[तोटक छन्द]

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो।
किधौं पद्मिनि को सुखदेन घनो।
जनु ऋृक्ष सबै यहि त्रास भगे।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे॥ ८५॥

[चंचरीछन्द]

रामचन्द्र—व्योम में मुनि देखिये अतिलाल श्रीमुख साजहीं।
सिंधुमें बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हुई॥८६॥

[सोरठा]

विश्वामित्र—चढ्यो गगनतरु धाइ, दिनकर-वानर अरुणमुख।
कीन्हों झुकि झहराइ, सकल तारका कुसुम बिन॥८७॥

[दोहा]

लक्ष्मण—जहाँ वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवन्त बिन, संपति शोभा साज॥ ८८॥

[तोमर छन्द]

चहुँभाग बाग तड़ाग। अब देखिये बड़भाग॥
फल फूल सों संयुक्त। अलि यों रमै जनु मुक्त॥८९॥

[दोहा]

रामचन्द्र—ते न नगरि ना नागरी, प्रतिप
जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पान॥९०॥

[सवैया]

सातहुद्वीपन के अवनीपति हारि रहे जियमें अब जाने।
बीसबिसे[1] ब्रत भंगभयो सो कहौ अब केशव को धनु ताने।
शोक की आगि लगी परिपूरण आइगये घन स्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलिउठे तरुपुण्य पुराने ॥९१॥

विश्वामित्र और जनक की भेंट

[दोधकछन्द]

आइगये ऋषिराजहि लीने। मुख्य सतानँद विप्र प्रवीनैं।
देखि दुवौ भये पांयनि लीने। आशिष शीरपवासु लै दीनैं॥९२॥

[सवैया]

विश्वामित्र—
केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरतिबेलि बई है।
दानकृपान विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमई है॥ ९३॥

[सोरठा]

जनक—जिन अपनो तनस्वर्ण, मेलि तपोमय अग्निमें।
कीन्हों उत्तमवर्ण, तेई विश्वामित्र ये॥ ९४॥

[मोहन छंद]

लक्ष्मण—अनराजवंत। जगयोगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत॥ ९५॥

१—बीस बिसे=बीसो बिस्वा, निश्चय।

[विजय]

श्रीराम—

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुये विजनादिक वात डगै।
न घटै न वढै निशि वासर केशव लोकन को तमतेज भगै।
भवभूपण भूपित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहूं थलहूं परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ॥९६॥

[तारक छन्द]

जनक—यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनिदेव अदेवन को मन मोहै।
हम को वपुरा सुनिये ऋषिराई।
सब गांउं छ सातक की ठकुराई ॥ ९७ ॥

[विजय छन्द]

विश्वामित्र—

आपने आपने ठौरनि,तौ भुवपाल सवै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपति की तुमहीं धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूपन को भव भूपण भू तन तैं तनया उपजाई ॥ ९८ ॥

[दोहा]

जनक—इहि विधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिवे को समरत्थ ॥ ९९ ।

[सवैया]

लोकन की रचना रचिवे को जहाँ परिपूरण बुद्धि विचारी।
ह्वै गई केशवदास तहाँसव भूमि अकाश प्रकाशित भारी।

गुरु[1] सलाक[2] समान लसी अति रोष भई दृगदीठि तिहारी।
होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधारँगधारी ॥

[दोहा]

केशव विश्वामित्र के, रोषमई दृगजानि।
संन्यासी तिहुँ लोक में, केहि न उपासी आनि

[दोधक छन्द]

जनक—ए सुत कौन के शोभहिं साजे।
सुंदर श्यामल गौर विराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला विमला[3] पति कोऊ ॥ १०२ ॥

[चौपाई]

विश्वामित्र—
सुंदर श्यामल राम सु जानों। गौर सुलक्ष्मण नाम बखानों॥
आशिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥१०३॥

[दोहा]

नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥१०४॥

[घनाक्षरी]

दानिन के शील पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।

१—गुरु=तीक्ष्ण। २—सलाक=बाण। ३—विमला=सरस्वती।

दीप दीप हूं के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के।
देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के॥ १०५॥

[तार छन्द]

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक—ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊं।
गहिल्यावहिं हौं जनयूथ बुलाऊं॥ १०६॥

[दंडक छंद]

वज्रते कठोर है कैलास ते विशाल काल-
दंड ते कराल सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब,
छोड चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई।
पन्नग प्रचंड प्रति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि पर्वत प्रभा न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहिं,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई

[तोमर]

विश्वामित्र—सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिये यहि वार॥
पुनि वेगि ताहि चढ़ाय। यश लोक लोक बढ़ाव॥१०८॥

धनुष भंग

[दोहा]

ऋषिहि देखि हरष हियो, राम देखि कुम्हलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाइ॥१०६॥

[स्वागता छन्द]

रामचन्द्र कटिसों पटुबांध्यो। लीलयैव हर को धनु साध्यो॥
नेकुताहिकरपल्लवसोंछ्वै॥ फूलमूल जिमि टूक कर्यो द्वै॥११०॥

[सवैया]

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तिच्छ कटाक्ष नराच नवीनो।
राजकुमारनिहारिसनेहसों शंभु को सांचो शरासन कीन्हो॥१११॥

[विजया छंद]

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिग पाल बल
पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।
सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को
क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड को।
बांधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग धनु-
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को॥

[दोहा]

जनक—सतानंद आनंद मति, तुम जो हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब, तोरयो श्रीरघुनाथ ॥११३॥

[तोमर]

सतानंद- सुनु राजराज विदेह। जब हौं गयो वहि गेह।
कछु मैं न जानी बात। कब तोरियो धनु तात ॥११४॥

[दोहा]

सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल ॥११५॥

[चित्रपदाछंद]

सीय जहीं पहिराई। रामहि माल सुहाई।
दुंदुभि देव बजाये। फूल तहीं बरसाये ॥११६॥

बरात आगमन

[दोहा]

पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब बात।
राजा दशरथ सुनतहीं, चाह्यो चली बरात ॥११७॥

[मोटनक छंद]

आये दशरत्थ बरात सजे। दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
चारों दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरनि कोन गनै ॥११८॥

[तारकछंद]

बनि चारि बरात चहूँदिशि आई।
नृप चारि चमू अगवान पठाई॥

जनु सागर को सरिता पगुधारी।
तिनके मिलिबे कहँ बाहँ पसारी ॥११९॥

[दोहा]

बारौठे[1] को चार करि, कहि केशव अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो, पहिराये सब भूप ॥१२०॥

[त्रिभंगी छंद]

दशरत्थ सँघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माहँ गये।
आकाश विलासी प्रभा प्रकाशी जलज गुच्छ जनु नखत नये।
अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहां तहां शुभ शोभ जगीं ॥१२१॥

[दोहा]

रामचन्द्र सीता सहित, शोभत हैं त्यहि ठौर।
सुबरणमय मणिमय खचित, शुभ सुंदर शिर मौर ॥१२२॥

विवाह

[षट्पद]

बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभनिवारण।
भरद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि।
विश्वामित्र पवित्र विप्र अति बामदेव पुनि।
सब भांति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ वशिष्ठ पूजत कलश।
शुभ सतानंद मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ॥१२३॥

१—बारौठे को चार=दरवाजा चार, द्वार पूजा।

[अनुकूल छंद]

पावक पूज्यो समिध सुधारो।
आहुति दीनो सब सुख कारो।
दे तब कन्या बहु धन दीन्हों।
भाँवरि पारि जगत यश लीन्हों ॥१२४॥

[स्वागता छन्द]

राजपुत्रिकनि सों छवि छायें। राज राज सब डेरहि आये।
हीर चीर गज बाजि लुटाये। सुंदरीन बहु मंगल गाये ॥१२५॥

शिष्टाचार

[सोरठा]

बासर चौथे याम, सतानंद आगू दिये।
दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह बनि ॥ १२६ ॥

[दोहा]

आगेह्वै दशरथ लियो, भूपति आवत देखि।
राजराज मिलि बैठियो, ब्रह्मब्रह्म ऋषि लेखि ॥ १२७ ॥

[सवैया]

जनक—

सिद्ध समाज सजैं अजहूँ न कहूँ जग योगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त समुद्र बसैं नित ब्रह्महु पै बरणी जो न जाई ॥
रूप न रङ्ग न रेख विशेष अनादि अनन्त जो वेदन गाई।
केवल गाधि के नन्द हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत देखाई॥१२८॥

[तारक छंद]

जिनके पुरिया मुच गंगहि ल्याये।
नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये।
जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी।
हर को धनुभंग प्रमें पुर लीनी ॥ १२६ ॥
जिन आपु अदेय अनेक सँहारे।
सब काल पुरन्दर के रखवारे।
जिनकी महिमाहि अनंत न पायो। १६८
हम को बपुरा यश वेदनि गायो ॥ १३० ॥
विनती करिये जन जो जिय लेखो।
दुखदेख्योज्योंकालिहत्योंआजहुदेखो।
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी।
हम हैं चरणोदक के अभिलाषी ॥ १३१ ॥

[तामरस छन्द]

जय ऋषिराज विनय करि लीनों।
सुनि सब के करुणा रस भीनों।
दशरथ राय यहै जिय जानी।
यह घर एक भई रजधानी ॥ १३२ ॥

[दोहा]

दशरथ—हमको तुम से नृपति की, दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीनी कन्यका, त्रिभुवन की शिरताज ॥ १३३ ॥

[विजय छंद]

वशिष्ठ—

एक सुखी यहि लोक विलोकिये हैं वहि लोक निरै पगुधारी।
एक इहां दुख देखत केशव होत वहां सुरलोक विहारी।
एक इहांऊ उहां अति दीन सो देत दुहूं दिशि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सबलोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी॥१३४॥

जाबालि—

ज्यों मणि में अति ज्योति हुती रवि ते, कछु और महाछवि छाई।
चंद्रहिं बंदत हैं सब केशव ईश ते बंदनता[१] अति पाई॥
भागीरथी हुतिय अति पावन बावन ते अति पावनताई।
त्यों निमिवंश बड़ोई हुतो भइ सीय सँयोग बड़ीये बड़ाई॥१३५॥

[दोहा]

पूजि राज ऋषि ब्रह्म ऋषि, दुंदुभि दीन्हि बजाइ।
जनक कनक मन्दिर गये, गुरु समेत सुख पाइ॥ १३६॥

जेंवनार

[चामर छंद]

आसमुद्र के छितीश और जाति को गने।
राजभोन भोज को सबै जने गये। बने।
भाँति भाँति अन्नपान व्यंजनादि जेंवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं॥ १३७॥

१—बंदनता—बंदनीयता, बंदन किये जाने की योग्यता।

[हरिगीत छंद]

*अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह रामजू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुवाम जू॥
को गनै कितने पुरुष कीन्हें कहत सब संसार जू।
सुनि कुंवरचितदै बरणि ताको कहिय सब ब्योहार जू॥१३८॥

बहु रूप सों नवयौवना बहु रत्नमय वपु मानिये।
पुनि पूर्व रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये॥
शुभ शेष फण मणिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू।
करि शीश पश्चिम पाँय पूरब गात सहज सुगंध जू॥१३९॥

यह हरी हठि हिरनाक्ष देखत देखि सुंदर देह सों।
बरबीर यज्ञवराह बर हीं लई छीनि सनेह सों॥
ह्वै गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल शृंगार जू।
पुनि कछुक दिन बश भई ताके लियो सरबस सार जू॥१४०॥

यह गयो प्रभु परलोक कीन्हों हिरण्यकश्यप नाथ जू।
तेहि भांति भौंतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू॥
यह असुर श्रीनरसिंह मार्यो लई प्रबल छड़ाइ कै।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जो सुख पाइ कै॥१४१॥

हरिचन्द्र विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय आनि कै।
तेहि बरी पुलि बरिचंड बर ही विप्र तपसी जानि कै।

* ऐसा कहते हैं कि केशवदास के कहने से यह 'गारी' प्रवीणराय पातुरी ने बना दी थी।

बलि बांधि छल बल लई बावन दई इंद्रहि आनिकै।
तेहि इन्द्र तजि पति कस्यो अर्जुन सहस भुज को जानिकै ॥१४२॥

तब तासु मदछवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू।
परशुराम सो सकुल जास्यो प्रबल बल को अग्नि जू।
तेहि बेर तबहीं सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइ कै।
इकवीस बेरा दई विप्रन रुधिर जल अन्हवाइ कै ॥ १४३ ॥

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूंकि कै।
अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ ढूंकि कै[1] ॥
यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू।
अब और मुख निरखैं न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथ जू ॥१४४॥

बरात बिदाई

[सोरठा]

प्रात भये सब भूप, बनि बनि मंडप में गये।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब शोभिजैं ॥ १४५ ॥

[नाराच छन्द]

रची विरंचि बास सी निथम्बराजिका भली
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली।
वितान श्वेत श्याम पीत लाल नीलका रँगे।
मनो दुहूँ दिशान के समान बिम्ब से जगे ॥ १४६ ॥

१—रहे ताकहँ ढूंकि कै=उसकी ताक लगाये हैं। वसे लेने की ताक में हैं।

[पद्धटिका छन्द]

गज मोतिन की अवली अपार।
तहँ कलशन पर उरमति सुढार।
शुभ पूरित रति जनु रुचिर धार।
जहँ तहँ अकाश गंगा उदार॥ १४७॥
गंज दन्तन[1] की अवली सुदेश।
तहँ कुसुमराजि राजति सुवेश।
शुभ नृप कुमारिका करति गान।
जनु देविन के पुष्पक विमान॥ १४८॥

[तामरस छन्द]

इत उत शोभित सुन्दरि डोलैं।
अर्थ अनेकनि बोलनि बोलैं।
सुखमुख मंडल चित्तनि मोहैं।
मनहुं अनेक कलानिधि सोहैं॥ १४९॥
भ्रकुटि विलास प्रकाशित देखे।
धनुष मनोज मनोमय लेखे॥
चर्चित हास चन्द्रिकनि मानो।
मुखमुख वासनि वासित आनो॥ १५०॥

[दोहा]

अमल कपोलै आरसी, बाहु चम्पक मार।
अवलोकनै विलोकिये, मृगमद मय घनसार॥ १५१॥

१—गजदंतन=दीवा।

पलकाचार

[सवैया]

बैठे जराय जरे पलिका पर रामसिया सब को मन मोहैं।
ज्योति समूह रहे मढ़िकै सुर भूलि रहे बपुरे नर को हैं।
केशव तीनिहुं लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
शोभन सूरजमंडल मांझ मनो कमला-कमलापति सोहैं ॥१५२॥

राम का शिखनख

[दोहा]

गंगाजल[१] की पाग शिर, सोहत श्रीरघुनाथ।
शिव शिर गङ्गाजल किधौं, चन्द्र चन्द्रिका साथ ॥१५३॥

[तोमर छन्द]

कछु भ्रकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश।
विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र। जनु जया जय के मंत्र ॥१५४॥

[दोहा]

यद्पि भ्रकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्धगति होति ॥१५५॥
श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नक्षत्र ॥१५६॥

१—गंगाजल=एक प्रकार का कपड़ा।

[पद्धटिका छन्द]

गज मोतिन की अवली अपार।
तहँ कलशन पर उरझति सुढार।
शुभ पूरित रति जनु रुचिर धार।
जहँ तहँ अकाश गंगा उदार॥ १४७॥
गज दन्तन[१] की अवली सुदेश।
तहँ कुसुमराजि राजति सुवेश।
शुभ नृप कुमारिका करति गान।
जनु देविन के पुष्पक विमान॥ १४८॥

[तामरस छन्द]

इत उत शोभित सुन्दरि डोलैं।
अर्थ अनेकनि बोलनि बोलैं।
सुखमुख मंडल चित्तनि मोहैं।
मनहुं अनेक कलानिधि सोहैं॥ १४९॥
भ्रुकुटि विलास प्रकाशित देखे।
धनुष मनोज मनोमय लेखे॥
चरचित हास चन्द्रिकनि मानो।
सुखमुख बासनि वासित जानो॥ १५०॥

[दोहा]

अमल कपोले आरसी, बाहु चम्पक मार।
अवलोकनि विलोकिये, मृगमद मय घनसार॥ १५१॥

१—गजदंतन=खोड़ा।

पलकाचार

[सवैया]

चैठे जराय जरे पलिका पर रामसिया सब को मन मोहैं।
ज्योति समूह रहे मढ़िकै सुर भूलि रहे वपुरे नर को हैं।
केशव तीनिहुं लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
शोभन सूरजमंडल मांझ मनो कमला-कमलापति सोहैं ॥१५२॥

राम का शिखनख

[दोहा]

गंगाजल[1] की पाग शिर, सोहत श्रीरघुनाथ।
शिव शिर गङ्गाजल किधौं, चन्द्र चन्द्रिका साथ ॥१५३॥

[तोमर छन्द]

कछु भ्रकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश।
विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र। जनु जया जय के मंत्र ॥१५४॥

[दोहा]

यदपि भ्रकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्धगति होति ॥१५५॥
श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नक्षत्र ॥१५६॥

१—गंगाजल=एक प्रकार का कपड़ा।

[पद्धटिका छन्द]

अति वदन शोभ सरसी[1] सुरंग।
तहं कमल नयन नासा तरंग।
जनु युवति चित्त विभ्रम विलास।
तेइ भ्रमर भंवत रस रूप आस॥ १४७॥

[निशिपालिका छन्द]

वासि अर्जुन दुन्नगचि[2] शुभ्र उर आनिये।
मध्य चनु रूप अनुरूपक बखानियें।
आठ रुचि रत्न सविशेष शुभ श्रीग्ये।
वाधि चनु ईश शुभ लक्षण सर्बे ठ्ये॥ १४८॥

[दोहा]

याचा श्रीरघुनाथ की लसति रघुवर देप।
साधु मना बच काय की मानो लिखी प्रिरेप॥ १४९॥

[सुन्दरी छन्द]

[illegible] शीश थाहु विराजत।
[illegible] मिलान अवर न लाजत।
[illegible] के आभिरान बखानहु।
[illegible] निरखरिन दी ध्वज मानहु॥ १५०॥
[illegible] उर मे अगु लात बखानहु।
[illegible] के सरसीरु मानहु।

१—n सरसीरुह। २—[illegible]।

सोहति है उर में मणि यों जनु ।
जानकी को अनुरागि रह्यो मनु ॥ १६१ ॥

[दोहा]

..हत जनरत[1] रामउर, देखत जिनको भाग ।
आइ गयो ऊपर मनो, अन्तर को अनुराग ॥ १६२ ॥

[पद्धटिका छन्द]

शुभ मोतिन की दुलरी सुदेश ।
जनु वेदन के अक्षर सुवेश ।
गजमोतिन की माला विशाल ।
मन मानहुँ सन्तन के मराल ॥ १६३ ॥

[विशेषक छन्द]

श्याम दुवौ पग लाल लसै द्युति यों तल की ।
मानहुं सेवति ज्योति गिरा यमुनाजल की ।
पाट जटी अति श्वेत सो हीरन की अवली ।
देवनदी कन मानहुँ सेवत भाँति भली ॥ १६४ ॥

[दोहा]

को वरणै रघुनाथ छवि, केशव बुद्धि उदार ।
जाकी किरपा शोभिजति, शोभारुथ संसार ॥ १६५ ॥

१—जनरत=भक्तवत्सलता ।

सीता का रूप वर्णन

[दंडक]

को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन,
होहिँ न छबीली छवि इन जौ श्रृंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये।
मदन निरूपम निरूपम निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूपकै विचारिये।
सीता जू के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये॥ १६६॥

[गीतिका छन्द]

श्री शोभिजै सखि सुन्दरी जनु दामिनी बपु मंडिकै।
घन श्याम को जनु सेवहीं जड़ मेघ ओघन छंडिकै॥
एक अंग चर्चित चारु चन्दन चन्द्रिका तजि चन्द को।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनँदकंदको॥१६७॥
मुख एक है नत लोकलोचन लोल लोचन को हरे।
जनु जानकी सँग शोभिजै शुभ लाज देहन को धरे॥
तहँ एक फूलन के विभूषण एक मोतिन के किये।
जनु छीरसागर देवता तन छीर छीटनि को छिये॥१६८॥

[सोरठा]

पहिरे बसन सुरंग, पावक युत स्वाहा मनो।
सहज सुगन्धित अंग, मानो देवी मलय की॥ १६९॥

दायज वर्णन

[चामर छंद]

मत्त दन्तिराज राजि बाजिराज राजि कै।
हेम हीर मुक्त चीर चारु लाज साजि कै।
वेष वेष बाहिनी अशेष वस्तु सोधियो।
दाइजो विदेहराज भांति भांति को दियो॥ १७० ॥
वस्त्र भौन स्योंं[1] वितान आसने बिछावने।
अस्त्र शस्त्र अंगत्राण भाजनादि को मने।
दासि दास बासि[2] बास[3] रोम पाट के कियो।
दाइजो[4] विदेहराज भांति भांति को दियो॥ १७१ ॥

परशुराम संवाद

[दोहा]

विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाइ॥ १७२ ॥

[चंचरी छन्द]

मत्त दन्ति अमत्त होगये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं॥
डारि डारि हथ्यार शूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि भेषन सज्जहीं॥ १७३ ॥

१—स्यों=सहित। २—बासि=सुगंध से सुवासित करके। ३—बास=वस्त्र। ४—दाइजो=दहेज।

[दोहा]

वामदेव ऋषि सों कह्यो, परशुराम रणधीर
परशुराम-महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलवीर ॥ १७४ ॥
वामदेव-महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज।
— — — कहतहीं, समुझेउ रावण राज ॥ १७५ ॥

[चन्द्रकला छन्द]

परशुराम—शर बाण-शिखीन अशेष समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहि को भरिहौं।
मल मूंजि कै राख सुखै[1] करिकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहौं॥
शितकंठ के कंठन को कठुला,
दशकंठ के कंठन को करिहौं ॥ १७६ ॥

[समुना छन्द]

परशुराम—यह कौन को दल देखिये।
वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिये॥
परशुराम—कहि कौन राम न जानियो।
वामदेव—शर ताड़का जिन मारियो ॥ १७७ ॥

१—मुखै=मदन हो थे।

[विजय छन्द]

परशुराम—ताड़का संहारी तिय न विचारी
कौन बड़ाई ताहि हने॥
वामदेव—मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहु न गने॥
करि क्रतु[1] रखवारी गुरु सुखकारी
गौतम की तिय शुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो
सीय स्वयंवर मांझ वरी॥ १७८॥

परशुराम— [दोहा]

हर हू होतो दंड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरशिशु नष्ट॥१७९॥

[विजय छंद]

बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बाण की वायु उड़ाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं वाम समेत पठै वन कोप के भार में भूंजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहिं॥१८०॥

[सोरठा]

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे वेगि दै।
गहे भरत को हाथ, आवत राम विलोकियो॥ १८१॥

१—क्रतु=यज्ञ।

[दंडक छन्द]

परशुराम—अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास
चंद्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्रामहै।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नामहै।
बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुण
मेरो मन मोहियत ऐसो एक याम है।
वैर मान वामदेव को धनुष तोरो इन
जानत हौं बीसबिसे राम वेष काम है॥ १८२॥

[गीतिका छन्द]

भरत—कुश मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।
कटिमूल श्रोन धनु तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये॥
धनु बाण तिक्ष कुठार केशव मेखला मृग चर्म सों।
रघुवीर को यह देखिये रसवीर सात्विक धर्मसों॥१८३॥

[नाराच छन्द]

राम—प्रचंड हैहयाधिराज -दंडमान जानिये।
अखंड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिये॥
अदेय देव जेय भीत रक्षमान लेखिये।
अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिये॥ १८४॥
परशुराम—सुनि रामचन्द्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार॥
राम—भृगुवंश के अवतंश। मनवृत्ति है केहि अंश॥१८५॥

परशुराम— [मदिरा छन्द]

तोरि शरासन शंकर को शुभ सीय स्वयंवर मांझ वरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा मन मेरीयो नेक न शंक करी॥
राम—सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुमहूं धौं कहो।
बाहु दै दोउ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहो॥१८६॥

[कुंडलिया]

टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोप।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष कालगति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका बज्र बज्र तिनुका ह्वै टूटै॥१८७॥

[विजय छन्द]

परशुराम—केवश हैहय राज को मांस
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
तालगि मेद महीपन को—
घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।
खीर[१] षडानन को मद केशव
सो पल में करि पान लियो रे।
तौलों नहीं सुख जौ लहुं तू
रघुवंश को शोन सुधा न पियो रे॥ १८८॥

१—खीर=(छीर) दूध।

[तंत्री छन्द]

भरत—बोलत कैसे भृगुपति सुनिये
सो कहिये तन मन बनि आवै ॥
आदि बड़े हौ बड़पन राखौ
जाते तुम सब जग यश पावौ ॥
चन्दनहूं में अति तन घसिये
आगि उठै यह गुनि सब लीजै ।
हैहय मारे नृपति संहारे
सो यश लै किन युग युग जीजै ॥ १८९ ॥

[नाराच छन्द]

र-भली कही भरत्थ तैं उठाय आगि अंग तैं ।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बाण ले निषंग तैं ॥
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै ।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै ॥ १९० ॥

[सोरठा]

लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोष करि ।
राम—बरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ॥ १९१ ॥

[दोहा]

भगवन्तन सों जीतिये, कबहुँ न कीने शक्ति ।
जीती एकै बात में, केवल कीने भक्ति ॥ १९२

[हरिगीत छंद]

जब हयो हैहयराज इन विन छत्र छितिमण्डल कस्यो।
गिरिवेध षट्मुख जीति तारक नंद को जब ज्यो हस्यो॥
सुत मैं न जाये राम सो यह कह्यो पर्वतनंदनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जगवंदिनी॥ १९३॥

[तोमर छन्द]

परशुराम-सुनु राम शील समुद्र। तव बंधु हैं अति क्षुद्र।
मम वाडवानल कोप। अँगु कियो चाहत लोप॥१९४॥

[दोधक छंद]

शत्रुघ्न—हो भृगुनंद बली जग माहीं,
राम विदा करिये घर जाहीं,
हौं तुमसों फिरि युद्धहि मांड़ौं
क्षत्रिय वंश को वैर लै छांड़ौं॥ १९५॥

[तोटक छंद]

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
परशुराम—कहि रामहि लै घर जाहु अबै॥
इन पै जग जीवत जो बचिहौ।
रण हौं तुमसों फिरिकै रचिहौ॥ १९६॥

[दोहा]

निज अपराधी क्यों हतौं, गुरुअपराधी छांड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रण मांडि॥ १९७॥

[विजय छंद]

भूतल के सब भूपन को मद
भोजन तौ बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारक नंद को मेद
पछयावरि[1] पान सिरायो हियोई।
खीर षडानन को मद केशव
सो पल में करि पान लियोई॥
राम तिहारेइ कंठ को शोणित
पान को चाहै कुठार कियोई॥ १९८॥

[तोटक छन्द]

लक्ष्मण-जिनकोहि अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह[2] चित्तपरै॥
जिनको जग अच्छत शीश धरै।
तिनको तन सुच्छत कौन करै॥ १९९॥

[विशेषक छंद]

...म-हाथ धरे हथियार सबै तुम शोभत हौ।
मारनहारहि देखि कहा मन लोभत हौ॥
क्षत्रिय के कुल है किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करौ उपचार न कैसेहु मीचु बचौ॥ २००॥

१-पछयावरि=शिखरन। २-निग्रह=दंड।

लक्ष्मण—क्षत्रिय है गुरु लोगन के प्रतिपाल करैं।
भूलिहु तो तिनके गुण औगुण जो न धरैं।
तौ हमको गुरुदोप नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाइ हती ॥ २०१ ॥

[विजय छन्द]

परशुराम—लक्ष्मण के पुरिषान किये
पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
वेष वनाइ किये वनितान को
देखत केशव ह्यो हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजै फल
ताको यहै जो हियो जरई।
आजु ते केवल तोको महाधिक
क्षत्रिन पै जो दया करई ॥ २

[गीतिका छन्द]

तब एक विंशति बेर मैं बिन क्षत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड श्रोणित सों भरे पितु तर्पणादि क्रिया सची ॥
उबरे जे क्षत्रिय क्षुद्र भूतल शोधि शोधि संहारि हौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारि हौं ॥२०३॥

[दोहा]

राम—भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन शिशुन पै, डारत हो यशभार ॥२०४॥

[सोरठा]

परशुराम-राम सुबन्धु सँभारि, छोड़त हौं शर प्राणहर।
हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगि दै[1] ॥२०५॥

[पद्धटिका छंद]

राम—सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप बिशिष अशेषन की जो अग्नि॥
सब विषिय छाँड़ि सहिहौं अखंड।
हर धनुष कर्यो जिन खंड खंड॥ २०६॥

[सवैया]

परशुराम—

हमारेन के तनत्राण बिचारि बिचारि बिरंचि करे हैं।
कुल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाय भरे हैं॥
कहा करिहौं तिनको तुम बालक देव अदेव धरे हैं।
ध के नंद तिहारे गुरू जिनते ऋषिवेष किये उबरे हैं॥२०७॥

[छप्पय]

—भगन भयो हर धनुष शाल तुमको अब शालै।
वृथा होइ बिधि सृष्टि ईश आसन ते चालै॥
सकल लोक संहरहु शेष शिर ते धर डारैं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहिं सबही तम भारैं॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुड़ि जाहि
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो शरासन युक्त शर

१-बेगिदै=शीघ्रता से।

[स्वागता छंद]

राम राम जब कोप कस्यो जू।
लोक लोक भय भूरि भस्यो जू
वामदेव तब आपुन आये।
राम देव दोऊ समुझाये ॥ २०६ ॥

[दोहा]

महादेव को देखि कै, दोऊ राम विरे
कीन्हो परम प्रणाम उन, आशिष दियो असे

[चतुष्पदी]

महादेव-भृगुनंदन सुनिये मन महँ गुनिये रघुनंदन निदोषी।
निज्जु[1] ये अविकारी सब सुखकारी सबही विधि संतोषी।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो धनुष जो टूट्यो मैं तनमन सुख पायो २११

[पद्धटिका छंद]

तुम अमल अनंत अनादि देव।
नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सब को समान नहिं वैर नेह।
सब भक्तन कारन धरत देह॥ २१२ ॥
अब आपनपौ पहिचानि विप्र।
सब करहु आनिलो काज छिप्र॥

१-निजु=निश्चय।

तब नारायण को धनुष जानि।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि॥ २१३॥

[मोटनक छंद]

नारायण को धनुबाण लियो।
खैंच्यो हँसि देवन मोद कियो॥
रघुनाथ कहेउ अब काहि हनो।
त्रैलोक्य कँप्यो भय मान घनो॥ २१४॥
दिग्देव दहे बहु बात बहे।
भूकम्प भये गिरिराज ढहे॥
आकाश विमान अमान छपे।
हा हा सबही यह शब्द रपे॥ २१५॥

[शशिवदना छंद]

परशुराम-जग गुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो॥
मम गति मारी। हृदय बिचारी॥ २१६॥

[दोहा]

विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्योंहीं कियो, परशुराम गति भंग॥ २१७॥

[चतुष्पदी छंद]

सुर पुर गति भानो शासनमानो भृगुपति को सुख मारो।
आशिष रसभीने सब सुख दीने अब दशकंठहि मारो॥ २१८॥

[दोहा]

सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीन्हीं लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥२१६॥

[सवैया]

ताड़का तारि सुबाहु सँहार कै गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हृत्यो हर को हँसि कै तव देव अदेव हुते सब हारे॥
सीतहि व्याहि अभीत चल्यो गिरि गर्व चढे भृगुनंद उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनन्दन औधपुरी पगुधारे॥ २२० ॥

अयोध्या आगमन

[सुमुखी छंद]

व नगरी बहु शोभ रये। जहँ तहँ मंगल चार ठये॥
बरणतहैंकविराजयने। तन मन बुद्धि विवेक सने॥ २२१ ॥

[मोटनक छंद]

ऊंची बहु वर्ण पताक लसैं। मानो पुर दीपति सी दरसैं॥
देवी गण व्योम विमान लसैं। शोभै तिनके मुख अंचल सैं॥२२२॥

[तामरस छंद]

घर घर घंटन के रव बाजैं। विच विच शंख जु झालरि साजैं।
पटह पखाउजआवझ[1] सोहैं। मिलि सहनाइन सों मनमोहैं॥२२३॥

[हीरक छंद]

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पर यों बनी।
मोहन गिरि शृंगन पर मानहुँ महि मोहनी॥

१—आवझ=ताशा।

भूषनगन भूषित तन भूरि चितन चोरहीं।
देखति जनु रेखति तनु बान नयन कोरहीं ॥ २२४ ॥

[सुंदरी छंद]

अंकुर शूल चढ़ी मन मोहति।
सिन्धुन की तनया जनु सोहति ॥
पन्नग ऊपर पद्मिनि मानहुँ।
कंचन ऊपर दीपति जानहुं ॥ २२५ ॥

[विशेषक छंद]

एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे।
मोहति है मन मानहुँ चांदनि चंद धरे ॥
नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी।
मानहुं रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ २२६ ॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरे।
मेघन की द्युति मानहुं दामिनि देहधरे ॥
एकन के तन सूक्षम सारि जराय जरी।
सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ २२७ ॥

[तोटक छंद]

बरषै कुसुमावलि एकघनी।
शुभ शोभन कामलता सी बनी ॥
बरषै फल फूलन सायक[1] की।
जनु हैं तरुणी रति नायक की ॥ २२८ ॥

१—सायक=सावक=सावा धान का बीज।

[दोहा]

भोर भये गज पर चढ़े, श्रीरघुनाथ विचारि ॥
तिनहिं देखि वरणत सबै, नगर नागरी नारि ॥ २२९ ॥

[तोटक छंद]

तम पुंज लियो गहि भानु मनो ।
गिरि अंजन ऊपर सोम भनो ॥
मनमत्थ विराजत शोभ तरे[१] ।
जनु भासत लोभहि दान करे ॥ २३० ॥

[मरहट्टा छंद]

आनंद प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरा दौरी ।
आरती उतारैं सरवस वारैं अपनी अपनी पौरी ॥
पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दै सविशेषै ।
कुंकुम कर्पूरनि मृगमद चूरनि वर्षति वर्षा वेषै ॥२३१॥

[आभीर छंद]

यहि विधि श्रीरघुनाथ । गहे भरत को हाथ ॥
पूजत लोग अपार । गये राज दरबार ॥ २३२ ॥
गये एकही बार । चारों राज कुमार ॥
सहित वधूनि सनेह । कौशल्या के गेह ॥ २३३ ॥

१—शोभतरं=शृंगार के नीचे। (पाठान्तर) 'जनुराजत काम सिंगार तरे'।

[त्रिभंगी छंद]

बाजे बहु बाजैं तारनि साजैं सुनि सुर लाजैं दुख भाजैं।
नाचैं नव नारी सुमन शृंगारी गति मनुहारी सुख साजैं।
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन रिझावैं मन भावैं।
भूषण पट दीजे सब रस भीजै देखत जीजै छबि छावैं ॥२३३॥

[सोरठा]

रघुपति पूरण चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनंद, ता दिन ते तेहि पुर बढ़ै ॥ २३४ ॥

॥ इति बालकांड ॥

अयोध्या कांड

रामवनगमनवर

[दोहा]

रामचंद्र लक्ष्मण सहित, घर राखे दशरत्थ।
विदा कियो ननसार[1] को, सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ १ ॥

[तोटक छंद]

दशरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठहिं मंत्र लये ॥
दिन एक कहो शुभ शोभरयो। हम चाहत रामहिं राज दयो ॥२॥
यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊं वन रामहिं बुद्धि गुनी ॥
तेहिं मंदिर में नृपसों विनयो। वर देहु हतो हमको जो दयो ॥३॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो।
दशरथ--वर मांगि सुलोचनि मैं जो दियो ॥
कैकेयी—नृपता सुविशेष भरत्थ लहैं।
बरषैं वन चौदह राम रहैं ॥ ४ ॥

[पद्धटिकाछंद]

यह बात लगी उर वज्र तूल।
हिय फाट्यो ज्यों जीरण दुकूल ॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम।
तजि तात मात तिय बंधु धाम ॥ ५ ॥

१—ननसार=ननहाल।

कौशिल्या और राम

[मौक्तिकदाम छंद]

गये तहँ राम जहां निज मात।
राम--कही यह बात कि हैं वन जात।
कछू जनि जी दुख पावहु माइ।
सो देहु अशीष मिलौं फिरि आइ॥ ६॥
कौशल्या—रहौ चुप ह्वै सुत क्यों वन जाहु।
न देखि सकैं तिनके उर दाहु।
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ।
करैं उलटी विधि क्यों कहि जाइ॥ ७॥

[मल्लकपक छंद]

राम-अन्न देह सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोल ले करै जो दीह पोषि गात॥
दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ।
शासना[1] न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ॥ ८॥

[हरनी छंद]

कौशल्या-मोहिं चलौ बन संग लियें। पुत्र तुम्हें हम देखि जियें॥
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरत्थ करै॥ ९॥

[तोमर छंद]

राम-तुम क्यों चलो बन आजु। जिन शीश राजत राजु॥
जिय जानिये पति देव। करि सर्वभाँतिन सेव॥१०॥

१—शासना=आज्ञा।

पति देइ जो अति दुःख। मन मानि लीजै सुःख॥
सब जक्त[१] जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र॥ ११॥

[अमृतगति छंद]

नित पति पंथहि चलिये। दुख सुख को दलु दलिये।
तन मन सेवहु पति को। तब लहिये शुभ गति को॥ १२॥

[स्वागता छंद]

योग याग व्रत आदि जो कीजै।
न्हान गानगुन[२] दान जो दीजै॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा।
होहिं एक फल कै पति सेवा॥ १३॥
तात मातु जन सोदर जानौं।
देवर जेठ सगे सो बखानौं॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छवि छाई।
है विहीन भरता दुख दाई॥ १४॥

[कुंडलिया]

नारी तजै न आपनो, सपने हू भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर, अंध अनाथ अपार॥
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ योगी॥
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुपति पति तजै न नारी॥ १५॥

१—जक्त=जगत, संसार। २—गानगुन=गुण गान, हरिकीर्त्तन।

[पंकजवाटिका छंद]

नारि तजै न मरे भरतारहिं । ता संग सहति धनंजय[1] झारहिं ॥
जो केहुं करतार जिआवत । तौ ताको यह बात सुनावत ॥१६॥

[निशिपालिका छंद]

गान बिन मान बिन हास बिन जीयहीं ।
तप्त नहिं खाइ जल शीत नहिं पीयहीं ।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोयहीं ।
शीत जल न्हाइ नहिं उष्ण जल जोयहीं ॥ १७ ॥
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनही धरै ।
काय मन बाच सब धर्म करिबो करै ।
कृच्छ्र उपवास[2] सब इंद्रियनि जीतहीं ।
पुत्रशिषलीन तन जौलगि अतीतहीं[3] ॥ १८ ॥

[दोहा]

पति हित पितु घर तनु तज्यो, सती साखि दे देव ।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥ १९
मनसा वाचा कर्मणा, हम सों छोड़ो नेहु ।
राजा को बिपदा परी, तुम तिनकी सुधि लेहु ॥ २०

---

१ धनंजय=अग्नि । २—कृच्छ्र उपवास=चंद्रायण व्रत । ३–अतीत भरे, मृत्यु को प्राप्त हों ।

सीता प्रति राम का उपदेश

[पद्धटिका छंद]

उठि रामचन्द्र लक्ष्मण समेत।
तब गये जनक तनया निकेत॥
राम—सुनु राजपुत्रिके एक बात।
हम वन पठये हैं नृपति तात॥ २१॥
तुम जननि सेव कहँ रहहु वाम।
कै जाहु आजुही जनक धाम॥
सुनु चन्द्रवदनि गजगमनि ऐनि।
मन रुचै सो कीजे जलजनैनि॥ २२॥

[नाराच छंद]

सीता—न हैां रहैां न जाहुँजू विदेह धाम को अवै।
कही जो बात मातु पै सो आजु मैं सुनी सबै॥
लगे छुधाहि मा भली विपत्ति मांझ नारिये।
पियास त्रास नीर वीर युद्धमें सम्हारिये॥२३॥

[सुप्रिया छंद]

लक्ष्मण—वन महँ विकट विविध दुख सुनिये।
गिरि गहवर मग अगमहि गुनिये॥
कहुं अहि हरि कहुं निशिचर चरहीं।
कहुं दव दहन दुसह दुख दहहीं॥ २४॥

[दंडक]

सीता-केशोदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास
दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै।

वायु को वहन दिन दावा को दहन बड़ी
बाड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यो परै।
जीरन जनम जात जोर जुर[1] घोर पीर
पूरण प्रकट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पति के प्रताप रघु-
बीर को बिरह बीर मोसों न सह्यो परै॥ २५॥

लक्ष्मण प्रति राम का उपदेश

[विशेषक छंद]

राम—धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करो।
मातनि के सुनि तात सो दीरघ दुःख हरो॥
आइ भरत्थ कहा धौं करै जिय भाय गुनी।
जो दुख देहिं तो लै उरगौ[2] यह बात सुनी॥ २६॥

[दोहा]

लक्ष्मण-शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिये घर सेवक वन नाथ॥ २७॥

वनयात्रा

[द्रुतविलंबित छंद]

विपिन मारग राम विराजहीं।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं॥
विविध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो॥ २८॥

---

१ जुर=ज्वर, २ उरगौ=अंगीकार करौ, सहो।

[दोहा]

राम चलत सब पुर चल्यो, जहँ तहँ सहित उछाह ।
मनो भगीरथ पथ चल्यो, भागीरथी प्रवाह ॥ २६ ॥

[चंचला छंद]

रामचन्द्र धाम ते चले सुने जबै नृपाल ।
बात को कहै सुनै सो ह्वै गये महा विहाल ॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ ।
गेह[१] चूरि ज्यों चकोर चंद्रमैं मिलै उड़ाइ ॥ ३० ॥

[चंचरी छंद]

कौनहो कित ते चले कित जात हो केहि काम जू ।
कौनकी दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू ॥
एक गाँउँ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानिये ।
देश के परदेश के किधौं पंथ की पहिचानि ये ॥ ३१ ॥

[जगमोहन दंडक]

किधौं यह राजपुत्री बरहीं बर्खो है किधौं,
उपदि[२] बर्खो है यहि शोभा अभिरत हौ ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केशोदास
जात तपोवन शिव बैर सुमिरत हौ ।
किधौं मुनि शापहत किधौं ब्रह्मदोषरत
किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम बिरत हौ ।

१—गेह=पिंजड़ा । २—उपदि=गुरुजन की इच्छा के विरुद्ध अपनी इच्छा से ।

किधौं कोऊ ठग हौ ठगोरी लीन्हे किधौं तुम
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ ॥ ३२ ॥

[मत्त-मातंग-लीला-करन दंडक]

मेघ मंदाकिनी[१] चारु सौदामिनी
रूप रूरे लसैं देह धारी मनो।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंश के हैं मनो भाग भारे मनो ॥
देवराजा लिये देवरानी मनो
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये।
पक्ष दू संधि संध्या सधी है मनो
लक्षि ये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये ॥ ३३ ॥

[अनंगशेखर दंडक

तड़ाग नीर हीन ते सनीर होत केशोदास
पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहीं।
तमाल वल्लरी समेति सूखि सूखि के रहे
ते बाग फूलि फूलि के समूल शूल खंडहीं॥
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत
हंस हंसिनी समेत शारिका सबै पढ़ैं।
जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं
अनेक भांति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं ॥

१—मंदाकिनी=आकाशगंगा।

[सुंदरी छंद]

ग्राम को राम समीप महाबल।
सीतहि लागत है अति शीतल॥
ज्यों घन संयुत दामिनि के तन।
होत हैं पूष के करन [१] भूषन॥ ३५॥
मारग की रज तापित है अति।
केशव सीतहि शीतल लागति॥
ज्यों पद पङ्कज ऊपर पाँयनि।
दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि॥ ३६॥

[दोहा]

प्रति पुर औ प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि।
सीताजू को देखि कै, वर्णत हैं सुखकारि॥ ३७॥

[जगमोहन दंडक]

वासों मृग अङ्क कहैं तोसों मृगनैनी सब
वह सुधाधर तुहूं सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजैंवह
कलानिधि तुहूं कला कलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाश कर
अंबर विलास कुवलय हित मानिये।
वाके अति शीत कर तुहूं सीता शीतकर
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये॥ ३८॥

---

१ – पूषन के कर=सूर्य की किरणें।

कलित कलंक केतु केतु अरि सेत गात
भेग योग को अयोग रोग ही को थलसों ॥
पून्योई को पूरन पै प्रति दिन दूनों दूनो
छण छण छीण होत छीलर[1] को जलसों ।
चंद्रसो जो बरणत रामचंद्र की दोहाई
सोई मति मंद कवि केशव कुशल सों ।
सुंदर सुवास अरु कोमल अमल अति
सीताजू को मुख सखि केवल कमल सों ॥

एके कहैं अमल कमल मुख सीताजू को
एक कहैं चन्द्रसम आनंद को कंद री ।
होइ जो कमल तौ रयनि में न सकुचै री
चंद जो तौ बासर न होइ द्युतिमंद री ।
बासर ही कमल रजनि ही में चंद्र मुख
बासर हू रजनि विराजै जगवंद री ।
देखे मुख भावै अन देखेई कमल चंद
ताते मुख मुखै सखी कमलौ न चंद री[2] ॥ ४० ॥

[दोहा]

ीतानयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ ।
ामचंद्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ॥ ४१ ॥

१—छीलर=चुल्लू, अँजुली । २—ताते......चंद री=इससे इस मुखके समान यही मुख है, कमल और चंद्र इसके समान नहीं है ।

[विजय छन्द]

बहु बाग तड़ाग तरंगनि तीर
तमाल की छांह बिलोकि भली।
घटिका यक बैठत हैं सुख पाय
बिछाय तहां कुश काश थली।
मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं
सिय के शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिन को कहि केशव
चंचल चारु दृगंचल सों॥ ४२॥

[सोरठा]

श्रीरघुवर के दृए, अश्रु वलित सीता नयन।
सांची करी अदृए, भूँठी उपमा मीन की॥ ४३॥

[दोहा]

मारग यों रघुनाथ जू, दुख सुख सबही देत।
चित्रकूट पर्वत गये, सोदर सिया समेत॥ ४४॥

भरत का आना

[दोधक छंद]

आनि भरत्त पुरी अवलोकी।
स्थावर जंगम जीव सशोकी॥
भाट नहीं बिरदावलि साजैं।
कुंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं॥ ४५॥

राज सभा न विलोकिय कोऊ।
शोक गहे तब सोदर दोऊ॥
मंदिर मातु विलोकि अकेली।
ज्यों बिन वृक्ष विराजति बेली॥४६॥

[तोटक छंद]

तब दीरघ देखि प्रणाम कियो।
उठि कै उर कंठ लगाइ लियो॥
न पियो जल संभ्रम भूलि रहे।
तब मातु सों बैन भरत्थ कहे॥४७

भरत केकयी का प्रश्नोत्तर

[विजया छंद]

ातु कहां नृप, तात गये सुर लोकहि, क्यों? सुत शोक लये।
ुत कौन सुराम, कहां हैं अबै वन लक्ष्मण सीय समेत गये
ा काज कहा करि केवल मो सुख ताकों कहा सुख यामैं भये
ुमको प्रभुता धिक तोकों, कहा अपराध बिना सिगरेई हये॥४८॥

[दोहा]

भर्त्ता सुत विद्वेषिनी, सबही को दुखदाइ।
यह कहि देखे भरत तब, कौशल्या के पाइ॥४६॥

भरत कौशल्या वार्ता

[तोटक छंद]

तब पायन जाइ भरत्थ परे।
उन भेंटि उठाइ कै अंक भरे॥

शिर सूंघि विलोकि बलाइ लई ।
सुत तो विन या विपरीत भई ॥ ५० ॥

[तारक छंद]

भरत—सुनु मातु भई यह बात अनैसी ।
जु करी सुत भर्तृविनाशिनि जैसी ॥
यह बात भई अब जानत जाके ।
द्विज दोष परैं सिगरे शिर ताके ॥ ५१ ॥

जिनके रघुनाथ विरोध वसै जू ।
मठधारिन के तिन पाप ग्रसै जू ॥
रस राम रस्यो मन नाहिं न जाको ।
रण मैं नित होइ पराजय ताको ॥ ५२ ॥

कौशल्या—जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयाने ।
अति साधुचरित्र तुम्हैं हम जाने ॥
सबको सब काल सदा सुखदाई ।
जिय जानति हौं सुत ज्यौं रघुराई ॥ ५३ ॥

दशरथ दाह

[चंचरी छंद]

हाइ हाइ जहां तहां सब ह्वै रही सिगरी पुरी ।
धाम धामनि सुन्दरी प्रगटीं सबै जे हुतीं दुरी ॥

लै गये नृपनाथ को सब लोग श्रीसरयू तटी।
राजपत्नि समेत पुत्रन विप्रलाप गही रटी[1] ॥ ५४ ॥

[सोमराजी छंद]

करी अग्नि अर्चा। मिटी प्रेत चर्चा॥
—वै राजधानी। भई दीन बानी॥ ५५ ॥

[कुमारललिता छंद]

क्रिया भरत कीनी। वियोग रस भीनी॥
सजी गति नवीनी। मुकुंद पद लीनी॥ ५६ ॥

भरत का चित्रकूट गमन

[तोटक छन्द]

पहिरे बकला सु जटा धरि कै।
निज पाँयनि पंथ चले अरि कै॥
तरि गंग गये गुह संग लिये।
चित्रकूट बिलोकत छाँड़ि दिये॥ ५७ ॥

[मदनमोदक छन्द]

सब सारस हंस भये खग खेचर बारिद ज्यों बहुधा गाजे।
बन के नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे॥
तजि सिद्ध समाधिन केशव दीरघ दौरि दरीन में आसन साजे।
भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुंदुभि बाजे॥ ५८ ॥

१—विप्रलाप गही रटी=प्रलाप का समूह रटकर, बहुत सा प्रलाप करके।

[दोहा]

रामचन्द्र लक्ष्मण सहित, शोभित सीता संग।
केशवदास सहास उठि, चढ़े धरणिधर शृंग॥ ५६॥

[मोहन छन्द]

लक्ष्मण—देखहु भरत चमू सजि आये।
जानि अबल हमको उठि धाये॥
हींसत हय बहु वारन गाजे।
जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजे॥ ६०॥

[तारक छंद]

गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं। झूलें
अति सुंदर शीश शिरोमणि मोहैं॥
मणि घूंघुर घंटन के रव बाजैं।
तड़िता युत मानहुँ वारिद गाजैं॥ ६

[विजय छंद]

युद्धको आजु भरत्थ चढ़े धुनि दुंदुभि की दशहूँ दिशि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू बरणी सो न केशव कैसेहुँ जाई॥
यों सबके तनत्राननि में झलकी अरुणोदय की अरुणाई।
अंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई॥ ६२॥

[तोटक छंद]

उठिकै धर धूरि अकाश चली।
बहु चंचल वाजि खुरीन दली।

भुव हालति जानि अकाश हिये।
जनु थंभन ठौरनि ठौर किये॥ ६३॥

[तारक छंद]

रण राजकुमार अरूझहिंगे जू।
अतिसम्मुख घायनि जूझहिंगे जू॥
जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने।
तिनके चढ़िये कहँ मारग कीने॥ ६४॥

[तोटक छंद]

रा—रहिपूरि विमाननि व्योम थली।
तिनको जनु टारन धूरि चली॥
परिपूरि अकाशहि धूरि रही।
सुगयो मिटि सूर प्रकाश सही॥ ६५॥

[दोहा]

अपने कुल को कलह क्यों, देखहिं रवि भगवंत।
यहै जानि अंतर कियो, मानो मही अनंत॥ ६६।

[तोटक छंद]

यहु तामहं दीह पताक लसैं।
जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं॥
रसना किधौं काल कराल घनी।
किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी॥ ६७॥

[दोहा]

देखिभरतकी चल ध्वजा, धूरिन में
युद्ध जुरन को मनहुँ प्रति योधन दं।ल ला॥ ६८॥

लक्ष्मण का कोप

[दंडक छंद]

लक्ष्मण—मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु
मेटि पारौं दीरघ वचन निज गुरको।
सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर
यहि सुख शोषौं शोक सबही के उर को॥
केशोदास सविलास बीस बिसे बास होइ
कैकेयी के अंग अंग शोक पुत्रजुरको॥
रघुराज जू को साज सकल छिड़ाइ लेउँ
भरतहि आजु राज देउँ प्रेत पुर को॥६९॥

[दोहा]

एकराज में प्रगट जहँ, द्वै प्रभु केशवदास॥
तहां बसत है रैनदिन, मूरतिवंत विनास॥ ७०॥

राम भरत मिलन

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब सबै सैना वहि थल राखी।
मुनि जन लीन्हे सँग अभिलाषी॥
रघुपति के चरणन शिर नाये।
उन हँसि कै गहि कंठ लगाये॥ ७१॥

[दोधक छंद]

भरत—मातु सबै मिलिबे कहँ आई।
ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई॥
लक्ष्मण त्यों उठिके रघुराई।
पाँयन जाय परे दोउ भाई॥ ७२॥

मातनि कंठ उठाय लगाये।
प्राण मनो मृत देहनि पाये॥
आइ मिली तब सीय सभागी।
देवर सासुन के पग लागी॥ ७३॥

[तोमर छंद]

तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ॥
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम ते उठीं सब रोइ॥ ७४॥

[दोधक छंद]

आँसुन सों सब पर्वत धोये। जंगम को जड़ जीवहु रोये॥
सिद्ध बधू सिगरी सुनि आईं। राजबधू सबई समुझाईं॥ ७५॥

[मोहन छंद]

धरि चित्त धीर। गये गंग तीर॥
शुचि ह्वै शरीर। पितु तर्पि नीर॥ ७६॥

[तारक छंद]

भरत—घर को चलिये अब श्रीरघुराई।
जनहीं तुम राज सदा सुखदाई॥

यह बात कही अलसों गल भीन्यौ।
उठि सोदर पाइँ परे तब तीन्यो ॥ ७७ ॥

[दोधक छंद]

श्रीराम—राज दियो हमको बन रूरो।
राज दियो तुमको अब पूरो ॥
सो हमहूं तुमहूं मिलि कीजै।
बापको बोलु न नेकहु छीजै ॥ ७८ ॥

[दोहा]

राजा को अरु बाप को, वचन न मेटै कोइ।
जो न मानिये भरत तौ, मारे को फल होइ ॥ ७९ ॥

[स्वागता छंद]

भरत—मद्यपानरत स्त्रीजित होई।
सन्निपातयुत बातुल जोई ॥
देखि देखि तिनको सब भागे।
तासु बात हति पाप न लागै। ८० ॥
ईश[1] ईश जगदीश[2] बखान्यो।
वेदवाक्य बल ते पहिचान्यो ॥
ताहि मेटि हठिकै रहिहौ तौ
गंग[3] तीर तन को तजिहौं तौ ॥ ८१ ॥

[दोहा]

मौन गही यह बात कहि, छोंडो सबै विकल्प[4]।
भरत जाइ भागीरथी, तीर कस्यो संकल्प ॥ ८२ ॥

१—ईश=विष्णु। २—जगदीश=ब्रह्मा। ३—गंग=मंदाकिनी।
४—विकल्प=विचार।

मंदाकिनी कृत भरतोद्बोधन

[इन्द्रवज्रा छंद]

भागीरथी रूप अनूप कारी।
चंद्राननी लोचन कंज धारी॥
वाणी वचानी सुख तत्व सोध्यौ।
रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यौ॥ ८३॥

[उपेन्द्रवज्रा छंद]

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो।
अनेकधा वेदन गीत गायो॥
तिन्हैं न रामानुज बंधु जानौ।
सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानौ॥ ८४॥

निजेच्छया भूतल देह धारी।
अधर्म संहारक धर्म चारी॥
चले दशग्रीवहि मारिबे को।
तपी व्रती केवल पारिबे[1] को॥ ८५॥

उठो हठी होहु न काज कीजै।
कहैं कछू राम सो मानि लीजै॥
अदोष तेरी सुत मातु सोई।
सो कौन माया इनको न मोहै॥ ८६॥

१—पारिबे=पालना।

[दोहा]

यह कहि कै मागौंथ्यो, केवट सों मद्द।
भरत कह्यो तब राम सों, देहु पादुका [illegible]

भरत का लौटना

[उपेन्द्रवज्रा छंद]

चले वहाँ पावन पादुका लै।
प्रणामि राम सियहु को कै॥
गये ते नंदीपुर वास कीन्हे,
सबंधु श्रीरामहि चित्त दीन्हे॥ ८८॥

[दोहा]

कैकय भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग।
वन समान घर घर बसे, सकल विगत संभोग॥ ८९॥

॥ इति अयोध्या कांड ॥

मंदाकिनी कृत भरतोद्बोधन

[इन्द्रवज्रा छंद]

भागीरथी रूप अनूप कारी।
चंद्राननी लोचन कंज धारी॥
वाणी वखानी मुख तत्त्व सोध्यौ।
रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यौ॥ ८३॥

[उपेन्द्रवज्रा छंद]

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो।
अनेकधा बेदन गीत गायो॥
तिन्हें न रामानुज बंधु जानौ।
सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानौ॥ ८४॥

निजेच्छया भूतल देह धारी।
अधर्म संहारक धर्म चारी॥
चले दशग्रीवहि मारिबे को।
तपी ब्रती केवल पारिबे[1] को॥ ८५॥

उठौ हठी होहु न काज कीजै।
कहैं कछू राम सो मानि लीजै॥
अदोष तेरी सुत मातु सोहै।
सो कौन माया इनको न मोहै॥ ८६॥

[दोहा]

यह कहि कै भागीरथी, केशव भई अदृष्ट।
भरत कह्यो तब राम सों, देहु पादुका इष्ट ॥ ८७ ॥

भरत का लौटना

[उपेंद्रवज्रा छंद]

चले बली पावन पादुका लै।
प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै ॥
गये ते नंदीपुर बास कीनो।
सबंधु श्रीरामहि चित्त दीनो ॥ ८८ ॥

[दोहा]

केशव भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग।
बन समान बर घर बसे, सकल विगत संभोग ॥ ८९

॥ इति अयोध्या कांड ॥

अरण्य कांड

राम अत्रि मिलन

[भरतोद्धता छंद]

चित्रकूट तब रामजू तज्यो।
आइ यज्ञथल अत्रि को मज्यो।[1]
राम लक्ष्मण समेत देखियो।
आपनो सफल जन्म लेखियो॥ १॥

[चन्द्रवर्त्म छंद]

स्नान दान तप जाप जो करियो।
शोधि शोधि मन जो उर धरियो।
योग याग हम आलगि गहियो।
रामचन्द्र सब को फल लहियो॥ २॥

[वंशस्था छंद]

अनेकधा पूजन अत्रिजू कस्यो।
कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू धस्यो[1]॥
पतिव्रता देखि महर्षि की जहां।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहां॥ ३॥

१—भज्यो=भजन की, स्वीकार की।

सीता-अनुसूया-मिलन

[दोहा]

पतिव्रतन की देवता, अनसूया शुभ गात।
सीताजू अवलोकियो, जरा सखी के साथ॥ ४ ॥

[चतुष्पदी छंद]

शिर श्वेत विराजै कीरति राजै जनु केशव तप-बल की।
जनु वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थलथल की॥
कांपति शुभ ग्रीवा सब अँग सींवा देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति या जग में कछु नाहीं॥ ५ ॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

हरवाइ[1] जाय सिय पाइँ परी।
ऋषि नारि सूंघि शिर गोद धरी।
बहु अंगराग अँग अंग रये।
बहु भाँति ताहि उपदेश दये॥ ६ ॥

[स्रग्विनी छंद]

राम आगे चले मध्य सीता चली।
बंधु पाछे भये सोभ सोभै भली॥
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो।
जीव जीवेश के बीच माया मनो॥ ७ ॥

१—हरवाइ=शीघ्रता से

विराध वध

[मालती छंद]

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो।
नृप तनया भयभीत लेखियो॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो।
निज निर्वाण पंथ को टयो॥ ८॥

[दोहा]

रघुनायक सायक धरे, सकल लोक शिरमौर।
गये कृपा करि भक्ति वश, ऋषि अगस्त्य के ठौर॥ ९॥

अगस्त्य मिलन

[वसंततिलकाछंद]

श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य सनारि देख्यो।
स्वाहा समेत शुभ पावक रूप लेख्यो।
साष्टांग क्षिप्र अभिवंदन आइ कीन्हों॥
सानंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हों॥ १०॥
बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे।
सीता समेत रघुनाथ सबन्धु पूजे।
जाके निमित्त हम यज्ञ यज्यो[1] सो पायो।
ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जो वेद गायो। ११॥

१—यज्ञ यज्यो=यज्ञ किये।

[पद्धटिकाछंद]

ब्रह्मादि देव जय विनय कीन।
तट क्षीरसिंधु के परम दीन॥
तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ।
सुत हों दशरथ को होतु आइ॥ १२॥
हम तब ते मन आनन्द मानि।
मन चितवत तव आगमन जानि।
ह्याँ रहिजै करिजै देव काजु।
मम फूलि फल्यो तप वृक्ष आजु॥ १३॥

[पृथ्वी छंद]

श्रीराम—अगस्त्य ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनौ।
प्रशस्त सब भांति भूतल सुदेश जी में गुनौ॥
सनीर तरु खंड मंडित समृद्ध शोभा धरैं।
तहां हम निवास की विमल पर्णशाला करैं॥ १४॥

अगस्त्य— [पद्मावतीछंद]

यद्यपि जग कर्त्ता पालक हर्त्ता परिपूरण वेदन गाये।
अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूछन हमसों आये॥
सुनि सुर वर नायक राक्षस-घायक रक्षहु मुनि जन यश लीजै।
शुभ गोदावरि तट विशद पंचवट पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै॥१५॥

[दोहा]

केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचन्द्र रण धीर॥ १६॥

पंचवटी वन वर्णन

[त्रिभंगीछंद]

फल फूलन पूरे, तरु वर रूरे, कोकिल कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलैं॥
सारो शुक पंडित, गुणगण मंडित, भावनि में अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदनसरति मधु सब जानैं॥१७॥

लक्ष्मण— [सवैया]

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटीहू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी[1]॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी[2]।
चहुँओरन नाचति मुक्तिनटी गुण धूरजटी वनपंचवटी॥१८॥

[हाकलिका छंद]

शोभत दंडक की रुचिबनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै॥१९॥
बेर भयानक सी अति लगै। अर्क समूह जहाँ जगमगै॥
नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्रीहरि कीजनुमूरतिलसै॥२०॥

[दोधकछंद]

राम—पांडव की प्रतिमा सम लेखो।
अर्जुन भीम[3] महामति देखो॥

१—तटी=समाधि २—गटी=गठरी ३—भीम=भयंकर,

है सुभगा सम दीपति पूरी।
सिंदुर की तिलकावलि रूरी॥ २१॥
राजति है यह ज्यों कुलकन्या।
धाइ विराजति है संग धन्या॥
केलि थलो जनु श्री गिरिजा की।
शोभ धरे शितकंठ[1] प्रभा की॥ २२॥

गोदावरी वर्णन

[मनहरनछंद]

अति निकट गोदावरी पाप संहारिणी।
चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी॥
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिणी।
बहु नयन देवेश शोभा मनोधारिणी॥ २३॥

[दोधक छंद]

रीति मनो अविवेक को थापी।
साधुन की गति पावत पापी।
कंजज[2] की मति सी वड़ भागी।
श्री हरिमंदिर[3] सों अनुरागी॥ २४॥

[अमृतगति छंद]

निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी॥
निगम सदा गति सुनिये। अगति महापति-गुनिये॥ २५॥

१—शितकंठ=मयूर, महादेव २—कंजज=ब्रह्मा। ३—हरिमंदिर=समुद्र, विष्णुस्थान।

[दोहा]

विषमय[1] यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥ २६ ॥

वन विलास वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

जय जय धरि बीना प्रगट प्रवीना,
बहु गुण लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावैं दुखनि भजावैं,
विविध बजावैं गुण गीता।
तजि मति संसारी विपिन विहारी,
दुख सुखकारी घिरि आवैं।
तब तब जगभूषण रिपुकुल दूषण,
सब को भूषण पहिरावैं ॥ २७ ॥

[तोटक छंद]

कबरी कुसुमालि सिखीन दई।
गज कुंभनि हारनि शोभ मई॥
मुकुता शुक सारिक नाक रचे।
कटि केहरि किंकिणि शोभसचे ॥ २८ ॥
दुलरी कल कोकिल कंठ बनी।
मृग खंजन अंजन भाँति ठनी॥

१—विषमय (विष=जल)। अर्थात् जल से परिपूर्ण।

नृप हंसनि नूपुर शोभ भिरी।
कल हंसनि कंठनि कंठसिरी॥ २६॥
मुख वासनि वासित कीन तबै।
तृण गुल्म लता तरु शैल सबै॥
जलहू थलहू यहि रीति रमैं।
वन जीव जहां तहँ संग भ्रमैं॥ ३०॥

[दोहा]

सहज सुगंधि शरीर की, दिशि विदिशन अवगाहि।
दूती ज्यों आई लिये, केशव शूर्पनखाहि॥ ३१॥

शूर्पणखा राम संवाद

[मरहट्टा छंद]

यक दिन रघुनायक सीय सहायक रतिनायक अनुहारी।
शुभ गोदावरि तट विमल पंचवट बैठे हुते मुरारी॥
छबि देखत हीं मन मदन मथ्यो तनु शूर्पणखा तेहि काल।
अति सुन्दर तनु करि कछु धीरज धरि बोली वचन रसाल॥३२॥

शूर्पणखा— [सवैया]

किन्नर हो नर रूप विचक्षण यच्छ कि स्वच्छ शरीरनि सोहौ।
चित्त चकोर के चंद किधौं मृग लोचन चारु विमाननि रोहौ[1]।
अंग धरे कि अनंग हौ केशव अंगी अनेकन के मन मोहौ।
वीर जटानि धरे धनुवाण लिये वनिता वन में तुम को हौ॥३३॥

१—रोहौ=आरोहण करते हो, सवार हो जाते हो।

[मनोरमा छंद]

राम—हम हैं दशरत्थ महीपति के सुत।
शुभ राम सुलक्षण नामन संयुत॥
यह शासन दै पठये नृप कानन।
मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन॥ ३४॥

शूर्पणखा—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहँ।
जिन की ठकुराइति तीनहु लोकहँ॥
सुनिजै दुख मोचन पंकज लोचन।
अब मोहिं करो पतिनी मन रोचन॥ ३५॥

[तोमर छंद]

तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहिं जानि सबाम॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि॥ ३६॥

[दोधक छंद]

शूर्पणखा—राम सहोदर मो तन देखो।
रावण की भगिनी जिय लेखो।
राजकुमार रमो सँग मेरे।
होहिं सबै सुख संपति तेरे॥ ३७॥

लक्ष्मण—मैं प्रभु हौं जन जानि सदाई।
दासि भये महँ कौनि बड़ाई॥
जौ भजिये प्रभु तौ प्रभुताई।
दासि भये उपहास सदाई॥ ३८॥

[मल्लिका छंद]

हास के विलास जानि। दीह मानखंड[1] मानि॥
भक्षिवे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि॥ ३६॥

[तोमर छंद]

तव रामचन्द्र प्रवीन। हँसि बंधु त्यों हग दीन॥
गुनि दुष्टता लह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन॥ ४०॥

[दोहा]

शोन छिछि छूटत वदन, भीम भई तेहि काल।
मानो कृत्या कुटिल युत, पावक ज्वाल कराल॥ ४१॥

खरदूषण वध

[तोटक छंद]

गइ शूर्पणखा खरदूषण पै। सजि ल्याई तिन्हें जगभूषण पै॥
शर एक अनेक ते दूरि किये। रवि के कर ज्यों तम पुंज पिये॥४२॥

[मनोरमा छंद]

नृप के खरदूषण[2] ज्यों खरदूषण।
तव दूरि किये रवि के कुल भूषण॥
गदशत्रु[3] त्रिदोष ज्यों दूरि करै वर।
त्रिशिरा शिर त्यों रघुनंदन के शर॥ ४३॥
भजि शूर्पणखा गइ रावण पै तव।
त्रिशिरा खरदूषण नाश कहे सब॥

१—मानखंड=अपमान। २—खरदूषण=मूर्ख। ३—गदशत्रु=वैद्य।

तब शूर्पणखा मुख बात सबै सुनि।
उठि रावण गो मारीच जहाँ मुनि ॥ ४४ ॥

रावण मारीच संवाद

[मनोरमा छंद]

रावण बात कही सिगरी त्यों।
शूर्पणखाहि विरूप करी ज्यों ॥
रावण—एकहि राम अनेक सँहारे।
दूषण त्यों त्रिशिरा खर मारे ॥ ४५ ॥
तू अब होहि सहायक मेरो।
हौं बहुते गुण मानिहौं तेरो ॥
जौ हरि सीतहि ल्यावन पैहैं।
वै श्रमि शोकन ही मरि जैहैं ॥ ४६ ॥
मारीच—रामहिं मानुष कै जनि जानो।
पूरण चौदह लोक बखानो ॥
जाहु जहाँ तिय लै सु न देखौं।
हौं हरि को अलहूं बल लेखौं ॥ ४७ ॥

[सुन्दरीछंद]

रावण—तू अब मोहि सिखावत है शठ।
मैं बश उक्त कियो हठ ही हठ ॥
वेगि चलै अब देहि न उत्तर।
देव सबै जन एक नहीं हर ॥ ४८ ॥

[दोहा]

जांचि चल्यो मारीच मन, हरण दुहूं विधि आसु ॥
रावण के कर नरक है; हरि कर हरिपुर वासु ॥ ४६ ॥

सीताराम मंत्रणा

[सुंदरी छंद]

राम—राज सुता इक मंत्र सुनो अब।
चाहत हौं भुव भार हरेउ सब ॥
पावक में निज देहहिं राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाषहु ॥ ५०

[चामरछंद]

आइयो कुरंग एक चारु हेमहीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को ॥
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखिकै।
हाथ चाप बाण लै गये गिरीश नांखिकै ॥ ५१ ॥

मारीचवध

[दोहा]

रघुनायक जब हीं हन्यो, सायक शठ मारीच।
हा लक्ष्मण यह कहि गिरेउ, श्रीपति के स्वर नीच ॥ ५२ ॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—राजतनया तबहिं बोल सुनि यों कहेउ।
जाहु चलि देवर न जात हमपै रहेउ ॥

हेम मृग होहि नहिं रैनिचर जानिये।
दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिये ॥ ५३ ॥
लक्ष्मण—शोच अति पोच उर मोच दुख दानिये।
मातु यह बात अवदात[1] मम मानिये ॥
रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलापहीं।
दीन स्वर राम कबहूं न मुख भाषहीं ॥ ५४ ॥

[चंचला छंद]

पक्षिराज यक्षराज प्रेतराज यातुधान।
देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥
पर्वतारि अर्व खर्व सर्व सर्वथा बखानि।
कोटि कोटि सूर चन्द्र रामचन्द्र दास मानि ॥ ५५ ॥

[चामरछन्द]

राजपुत्रिका कह्यो सो और को कहै सुनै।
कान मूंदि बार बार शीश बीसधा धुनै ॥
चापकीय[2] रेख खैंचि देव साखि दै चले।
नांघिहैं ते भस्म होहिं जीव जे बुरे भले ॥ ५६ ॥

सीताहरण

छिद्र ताकि क्षुद्रराज लंकनाथ आइयो।
भिक्षु जानि जानकी सो भीख को बोलाइयो ॥
शोच पोच मोचिकै सकोच भीम वेष को।
अंतरिक्षही करी ज्यों राहु चंद्ररेख को ॥ ५७ ॥

१—अवदात=सत्य, कपट रहित। २—चापकीय=धनुष से बनाई हुई

[दण्डक छन्द]

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माँहि,
शम्बर छोड़ाइ लई कामिनि की कामकी।
पाखँड की श्रद्धा की, मठेश बश एकादशी,
लीन्ही कै श्वपचराज शाखा शुद्ध सामकी।
केशव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की॥ ५८॥

सीता विलाप

[हरिलीलाछंद]

सीता-हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ वश जानहु मोहि वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहिं।
मार्तंडवंश यश की सब लाज तोहिं॥ ५९॥
पक्षी जटायु यह बात सुनंत धाइ।
रोक्यो तुरंत बलरावण दुष्ट जाइ॥
कीन्हों प्रचंड रथ छत्र ध्वजा विहीन।
छोड़्यो विपक्षि तब भो अब पक्षहीन॥ ६०॥

[संयुताछंद]

दशकंठ सीतहि लैचल्यो। अति वृद्ध गीधहि यों दल्यो॥
चित जानकी अभयकों कियो। हरि तीनिहू अवलोकियो॥ ६१॥

पद पद्म की शुभ घूंघरी। मणिनील-हाटक सों जरी।
छुत उत्तरीय[1] विचारिकै। शुभ डारि दीन गँठारि कै॥ ६२॥

[दोहा]

सीता के पद पद्म को, नूपुर पट जनि जातु।
मनहुं कस्यो सुग्रीव घर, राजथो प्रस्थानु॥ ६३॥

राम-विलाप

[सवैया]

मेज देखों नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौनकहीअपहीं॥
प्रति मोहित कै घन मांझ गई सुर मारग में मृग मास्यो जहीं॥
हु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं॥
अपहै यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मणहोइनहीं॥६४॥

राम जटायु संवाद

[दोधक छन्द]

धीरज सों अपनो मन रोक्यो।
गीध जटायु पस्यो अवलोक्यो॥
छत्र ध्वजा रथ देखि कै बूझेउ।
गीध कहौ रण कौन सों जूझेउ॥ ६५॥
जटायु—रावण लै गयो राघव सीता।
हा रघुनाथ रटै शुभ गीता॥

१—उत्तरीय=ओढ़नी।

मैं विन छत्र ध्वजा रथ कीन्हों।
ह्वै गयो हौं बल पत्त विहीनो ॥ ६६ ॥
राम—साधु जटायु सदा बड़ भागी।
तो मन मो वपु सों अनुरागी॥
छूट्यो शरीर सुनी यह बानी।
रामहि तब ज्योति समानी ॥ ६७ ॥

[तोटक छंद]

दिशि दक्षिण को करि दाह चले।
सरिता गिरि देखत वृक्ष भले॥
वन अंध कवंध विलोकतहीं।
दोउ सोदर खैंच लिये तवहीं॥ ६८ ॥

कवंध वध

जब खैवेहि को जिय बुद्धि गुनी।
दुहुं बाणनि लै दोउ बाहिं हनी॥
वहँ छाड़ि कै देह चल्यो जबहीं।
यह व्योम में बात कह्यो तवहीं॥ ६९ ॥

[तोटक छंद]

पीछे मघवा मोंहिं शाप दई।
गंधर्व ते राक्षस देह भई॥
फिरि कै मघवा सह युद्ध भयो।
उन क्रोध कै शीश में वज्र हयो॥ ७० ॥

[दोहा]

गयो शीश गहि पेट में, पख्यो धरणि पर आय।
कछु करुणा जियमाँ भई, दीन्ही बाहु बढ़ाय ॥ ७१ ॥
बाहु दई द्वै कोश की, आवै तेहि गहि खाउँ।
राम रूप सीता हरण, उधरहु गहन उपाउ॥ ७२
सुरसरि से आगे चले, मिलि हैं कपि सुग्रीव।
देहैं सीता की खबरि, बाढ़ै सुख अति जीव ॥ ७३ ॥

विरहजन्य प्रलाप

[तोटक छंद]

सरिता एक केशव सोभ रई।
अवलोकि तहां चकवा चकई॥
उरमें सिय प्रीति समाइ रही।
तिन सों रघुनायक बात कही ॥ ७४ ॥
अवलोकत हौं जबहीं जबहीं।
दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं॥
वह बैर न चित्त कछू धरिये।
सिय देहु बताइ कृपा करिये ॥ ७५ ॥
शशि के अवलोकन दूरि किये।
जिनके मुख की छवि देखि जिये।
कृत[१] चित्त चकोर कछूक धरौ।
सिय देहु बताय सहाय करौ ॥ ७६ ॥

१—कृत=उपकार।

[सवैया]

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक लिये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीक्षण जानि तजे डरि कै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरि कै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय सो करुणा करुणा करिकै॥७७॥

[नाराच छंद]

हिमांशु सूर सो लगै सो बात वज्र सो बहै।
दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै॥
विशेषि कालराति सो कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिये॥ ७८ ॥

राम शवरी मिलन

[पद्धटिका छंद]

यहि भाँति विलोके सकल ठौर।
गये शवरी पै दोउ देव मौर॥
लियो पादोदक त्यहि पद पखारि।
पुनि अर्घ्यादिक दीन्हें सुधारि॥ ७९ ॥
हर देत मंत्र जिनको विशाल।
शुभ काशी में पुनि मरण काल॥
ते आये मेरे धाम आज।
सब सफल करन जप तप समाज॥ ८० ॥

फल भोजन को तेहि धरे आनि।
भपे यक्षपुरुष अति प्रीति मानि॥
तिन रामचन्द्र लक्ष्मण स्वरूप।
तब धरे चित्त जग जोति रूप॥ ८१॥

[दोहा]

शबरी पावक पंथ तब, हरखि गई हरि लोक।
बनन विलोकत हरि गये, पंपा तीर सशोक॥ ८२॥

पंपासर वर्णन

[तोटक छंद]

अति सुन्दर शीतल शोभ बसै।
जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै॥
बहु पंकज पक्षि विराजत हैं।
रघुनाथ विलोकत लाजत हैं॥ ८३॥
सिगरी ऋतु शोभित शुभ्र जहीं।
लहै ग्रीषम पै न प्रवेश सही॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसैं।
सिय के शुभ लोचन से दरसैं॥ ८४॥

[विजय छंद]

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक[1] हाटक[2] की द्युति को है।
तापर भौंर भले मन रोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै॥

१—करह; टक=कमल पुष्प के बीच को छतरी। २—हाटक=सोना।

देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन[1] के शिर ऊपर सोहै ॥ ८५ ॥

लक्ष्मण- [सवैया]

मिलि चक्रिन[2] चंदन वात बहै अति मोहत न्यायन ही मतिको।
मृगमित्र[3] विलोकत चित्त जरै लिये चन्द निशाचर पद्धति को।
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानैं नहीं इनकी गति को।
दुख देत तड़ाग तुम्हें न बनै कमलाकर है कमलापति को ॥८६॥

॥ इति अरण्य कांड ॥

१—कमलासन=ब्रह्मा । २—चक्रिन=सर्प । ३—मृगमित्र=चंद्रमा ।

किष्किंधा कांड

[दोहा]

ऋष्यमूक पर्वत गये, केशव श्रीरघुनाथ।
देखे बानर पंच विभु, मानो दक्षिण हाथ॥ १ ॥

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब कपि राजा रघुपति देखे।
मन नरनारायण सम लेखे॥
द्विज वपु धरि तहँ हनुमत आये।
बहु विधि आशिष दे मन भाये॥ २ ॥

राम हनुमान संवाद

हनुमान-सब विधि रूरे बन महँ को हैं।
तन मन सूरे मनमथ मोहैं।
शिरसि जटा बकला वपुधारी।
हरिहर मानहुं विपिनविहारी॥ ३ ॥
परम वियोगी सम रस भीने।
तन मन एकै युग तन कीने॥
तुम को हौ का लगि बन आये।
क्यहि कुल हौ कौने पुनि जाये॥ ४ ॥

[चंद]

राम—पुत्र श्री दशरत्थ के बन राज शासन आइयो।
सीय सुन्दरि संग ही बिछुरी सो सोध न पाइयो॥
राम लक्ष्मण नाम संयुत सूरवंश बखानिये।
रावरे बन कौन हो क्यहि काज क्यों पहिचानिये ॥५॥

[दोहा]

हनुमान-या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सँग मंत्री चारि
बानर लई छँडाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि ॥ ६ ॥

[दोधक छंद]

वा कहँ जो अपनो करि जानो।
मारहु बालि विनै यह मानो॥
राज देहु जो वाकी तिया को।
तो हम देहिं बताय सिया को॥ ७ ॥

राम सुग्रीव मिताई

[दोहा]

उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ।
सीता जू के पट सहित, नूपुर दीन्हे आइ ॥ ८ ॥

[दंडक]

राम-पंजर की खंजरीट नैंनन को किधौं मीन
मानस को केशोदास जलु है कि जारु है।

ग्रंग को कि अंगराग गेंडुआ[1] की गलसुई[2]
केधौं कटि-जेब ही को उर को कि हार है।
ंधन हमारो कामकेलि को कि ताडिबे को
ताजनो[3] विचार को की चमर विचार है।
गान की जमनिका[4] की कंजमुख मूँदिबे को
ीताजू को उत्तरीय सब सुखसार है।

[स्वागता छंद]

बानरेन्द्र तब यों हँसि बोल्यो।
भीति भेद जिय को सब खोल्यो॥
आगे धारि परतच्छ करी जू।
रामचन्द्र हँसि बाहँ धरी जू॥ १०॥
सूर पुत्र तब जीवन आन्यो।
बालि ओर बहु भाँति बखान्यो॥
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू।
सो अशेष बिनती बिनई जू॥ ११॥

सप्त ताल वेधन

एक बार शर एक हनो जो।
सात ताल बलवंत गनो तो॥
रामचन्द्र हँसि बाण चलायो।
ताल बेधि फिरि कै कर आयो॥ १२॥

१—गेंडुआ=तकिया । २—गलसुई=गाल के नीचे लगाने को छोटी गोल तकिया ३—ताजनो=कोड़ा । ४—जमनिका=परदा,कनात ।

[तारक छंद]

यह अद्भुत कर्म और पै होई।
सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई॥
निकरी मन ते सिगरी दुचिताई।
तुम सो प्रभु पाय सदा सुखदाई॥ १३॥

[विजय छंद]

बावन को पद लोकन मापि ज्यों बावन के वपुमाँह सिधायो।
केशव सूरसुता जल सिंधुहि पूरिकै सूरहि को पद पायो॥
काम के बाण त्वचा सब वेधिकै काम पै आवत ज्यों जग गायो।
राम को शायक सातहु तालनि वेधिकै रामहि के कर आयो १४

[सोरठा]

जिन के नाम विलास, अखिल लोक वेधत पतित।
तिनको केशव दास, सात ताल वेधन, कहा॥ १५॥

बालि वध

[पद्धटिका छंद]

रवि पुत्र बालि सों होत युद्ध।
रघुनाथ भये मन माहँ क्रुद्ध॥
शर एक हन्यो उर मित्र काम।
तब भूमि गिरयो कहि राम राम॥ १६॥
कछु चेत भये तेहि बलनिधान।
रघुनाथ विलोके हाथ बान॥

शुभ चीर जटा शिर श्याम गात।
घनमाल हिये उर विम्रलात ॥ १७ ॥

बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक।
जग मोहत हौ वपु धरि अनेक॥
तुम सदा शुद्ध सब,को समान।
केहि हेतु हत्यो करुणानिधान ॥ १८ ॥

राम—सुनि वासवसुत बुधि बल निधान।
मैं शरणागत हित हते प्रान॥
यह सांटो[1] लै कृष्णावतार।
तब ह्वै हौ तुम संसार पार॥ १९ ॥
रघुवीर रंक ते राज कीन।
युवराज विरद अंगदहि दीन॥
तब किष्किन्धा तारा समेत।
सुग्रीव गये अपने निकेत॥ २० ॥

[दोहा]

कियो नृपति सुग्रीव हति, बालि बली रणधीर।
गये प्रवर्षण अद्रि को, लक्ष्मण श्री रघुवीर ॥ २१ ॥

प्रवर्षणगिरि वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

देख्यो शुभ गिरिवर सकल सोभ धर।
फूल बरन बहु फलनि फरे॥

१—सांटो=बदला।

सँग सरसभूत जन केशरि के गण,
मनहु धरणि सुग्रीव धरे॥
संग शिवा विराजै गज मुख गाजैं,
परभृत[1] बोलै चित्त हरे॥
शिर शुभ चन्द्रकधर परम दिगंबर,
मानो हर अहिराज धरे॥ २२॥

[तोमर छंद]

शिशु सो लसै सँग धाइ। वनमाल ज्यों सुरराइ॥
अहिराज सो यहि काल। बहु शीश शोभनि माल॥

[स्वागता छन्द]

चंद्र मंद द्युति वासर देखो। भूमि हीन भुवपाल विशेषो॥
मित्र देखि यह शोभत है यों। राजसाज विनुसीतहि हौं ज्यों॥२४

[दोहा]

तिनी पति विनु दीन अति, पति पतिनी विनु मंद॥
चंद्र विना ज्यों यामिनी, ज्यों विन यामिनि चंद॥ २५॥

वर्षा वर्णन

[स्वागता छन्द]

देखि राम वरपा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई॥
आसपास तम की छवि छाई। राति दिवस कछु जानि न जाई॥२६

१—परभृत=कोकिल।

मंद मंद धुनि सो घन गाजैं। तूर[1] तार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकै यों। इंद्र लोक तिय नाचति हैं ज्यों॥

[मोटनक छन्द]

सोहैं घन श्यामल घोर घनें। मोहैं तिनमें बकपांति म
शंखावलि पी बहुधा जल सों। मानो तिनको उगिलै बल सों॥२
शोभा अति शक्र शरासन में। नाना द्युति दीसति है घन में।
रत्नावलिसी दिवि द्वारमनो। वर्षागम बांधिय देव मनो॥२९

[तारक छन्द]

घन घोर घने दशहूं दिशि छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥ ३०॥
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो।
निरघात सबै पविपात बखानो॥
धनु है यह गौरमदाइनि[2] नांहीं।
शर जाल बहै जलधार वृथा हीं॥ ३
भट चातक दादुर मोर न बोले।
चपला चमकै न फिरै खँग खोले॥
द्युतिवंतन को विपदा बहु कीन्हीं।
धरनी कहँ चंद्रवधू[3] धरि दीन्हीं॥ ३२॥

१—तूर=नगाड़ा। २—गौरमदाइनि=इंद्रधनुष। ३—चंदवधू=बीरबहूटी

तरुनी यह अत्रि ऋपीश्वर की सी।
उर में हम चन्द्रकला सम दीसी॥
वरषा न सुनें किलकै किल काली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥ ३३॥

[घनाक्षरी]

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केशोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सु हंसक सबद सुखदाई है।
अंबर वलित मति मोहै नील कंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है॥ ३

[दोहा]

वर्णत केशव सकल कवि, विपम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, संतत मिथ्या दृष्टि॥ ३५॥

[चंद्रकला छन्द]

कल हंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये॥
यहि काल कराल ते शोधि सबै हठिकै वरषा मिस दूरि किये।
अब धौं बिनप्राणप्रिया रहिहैं कहि कौनहितूअवलम्बिहिये॥३६॥

शरद वर्णन

[दोहा]

वीते वर्षा काल यों, आई शरद सुजाति।
गये अँध्यारी होति ज्यों, चारु चांदनी राति ॥ ३७ ॥

[मोटनक छंद]

दंतावलि कुन्द समान गनौ। चंद्रानन कुन्तल भौंर घनौ।
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो। राजीवनि ज्यों पद पानि भनो ॥३८॥
हारावलि नीरज[1] हीय रमैं। हैं लीन पयोधर अम्बर मैं॥
पाटीर[2] जोन्हाइहि अंग धरे। हंसीगति केशव चित्त हरे॥३९॥
श्रीनारद की दरसै मति सी। लोपै तमता अपकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति को। सतमारगकी समुझै गतिको ॥४०॥

[दोहा]

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई शरद सुजाति।
मनहुँ जगावन को हमहिं, बीते वर्षा राति ॥४१॥

सुग्रीव पर क्रोध

[कुंडलिया]

ताते नृप सुग्रीव पै, जैये सत्वर तात।
कहियो वचन बुझाइ कै, कुशल न चाहो गात॥
कुशल न चाहो गात चहत हो वालिहि देखो।
करहु न सीता शोध काम वश राम न लेखो॥

१—नीरज=मोती। २—पाटीर=चंदन।

राम न लेखो चित्त लही सुख संपति जाते।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है ताते ॥ ४२ ॥

[दोहा]

लक्ष्मण किष्किधा गये, वचन कहे करि क्रोध।
तारा तब समुझाइयो, कीन्हों बहुत प्रबोध ॥ ४३ ॥

[दोधक छंद]

बोलि लये हनुमान तबै जू।
ल्यावहु वानर बोलि सबै जू ॥
बार लगै न कहूं बिरमाहीं।
एक न कोउ रहै घर माहीं ॥ ४४ ॥

[त्रिभंगी छंद]

सुग्रीव सँघाती मुख दुति राती,
केशव साथहि सूर नये ॥
आकाश विलासी सूरप्रकाशी,
तब हीं वानर आइ गये ॥
दिशि दिशि अवगाहन सीतहि चाहन,
यूथप यूथ सबै पठये ॥
नलनील ऋच्छपति अंगद के सँग,
दच्छिण दिशि को बिदा भये ॥ ४५ ॥

सीताखोजहित वानर सेना का प्रस्थान

[दोहा]

बुधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के, मुँदरी दीन्हीं हाथ ॥ ४६ ॥

[हीरक छंद]

चण्ड चरण छण्डि धरणि मंडि गगन धावहीं।
तत्क्षण है दक्षिण दिशि लक्ष्य नहीं पावहीं॥
धीर धरन वीर वरण सिंधु तट सुभावहीं।
नाम परमधाम धरम राम करम गावहीं॥ ४७॥

[अनुकूल छंद]

अंगद—सीय न पाई अवधि विनासी।
होहु सबै सागरतटवासी॥
जो घर जैये सकुच अनंता।
मोहि न छोड़ै जनकनिहंता॥ ४८॥

हनूमान—अंगद रक्षा रघुपति कीन्हीं।
सोध न सीता जल थल लीन्हीं॥
आलस छांडौ कृत उर आनौं।
होहु कृतघ्नी जनि शिख मानौं॥ ४९॥

[दंडक]

अंगद—जीरण जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि,
रावण विरथ कीन्हों सहि निज प्राण हानि॥
हुते हनुमंत बलवंत तहां पांचजन,
दीने हुते भूषण कछूक रतरूप जानि॥
आरत पुकारत ही राम राम बार बार,
लीन्हों न छंड़ाय तुम सीता अति भीत मानि॥

गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ॥ ५० ॥

[दोहा]

सुनि संपाति सपक्ष ह्वै, रामचरित सुख पाय।
सीता लंका मांझ हैं, खगपति दई बताय ॥ ५१ ॥

[दंडक]

हरि कैसो वाहन की विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को ॥
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधौं,
लक्षण को वाण छूट्यो रावण निशंक को ॥
गिरि गजगंड ते उड़ान्यो सुवरण अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को ॥
हवाई[१] सी छूटी केशोदास आसमान में,
कमान[१] कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥ ५२ ॥

॥ इति किष्किधा कांड ॥

सुंदर कांड

हनुमान लंका गमन

[दोहा]

उदधि नाकपतिशत्रु[1] के, उदित जानि बलवंत।
अंतरिक्ष हीं लंघि पद, अच्छ छुयो हनुमंत ॥ १ ॥
बीच गये सुरसा मिली, श्रैार सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥ २ ॥

[तारक छंद]

कछु राति गये करि दुंदु दशा सी।
पुर मांझ चले बनराजि बिलासी ॥
जब हीं हनुमंत चले तजि शंका।
मग रोंकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥ ३ ॥

हनुमान लंका संवाद

लंका—कहि मोहिं उलंघि चले तुम को हो।
अति सूक्षम रूप धरे मन मोहो ॥
पठये क्यहि कारण कैान चले हो।
सुर हो किधौं कोऊ सुरेश भलेहो ॥ ४ ॥

१—नाकपतिशत्रु=मैनाक।

हनूमान–हम वानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुणी अवलोकन आये॥
लंका—हति मोहिं महामति भीतर जैये।
हनूमान–तरुणीहिं हते कवलों सुख पैये॥ ५॥
लंका—तुम मारेहि पैं पुर पैठन पैहो।
हठ कोटि करो घरहीं फिरि जैहो॥
हनुमंत बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तव ही वर नारी॥ ६॥

[चौपाई]

लंका—धनदपुरी हौं रावण लीन्ही।
बहु विधि पापन के रस भीनी॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हों।
वरु करुणा करि मो कहँ दीन्हों॥ ७॥
जब दशकंठ सिया हरि लैहैं।
हरि[1] हनुमंत विलोकन पैहैं॥
जब वह तोहि हतै तजि शंका।
तब प्रभु होइ विभीषण लंका॥ ८॥
चलन लगो जबही तब कीजो।
मृतक शरीरहि पावक दीजो॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥ ९॥

रावणशयनागार

तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं।
बिच बिच आवझ बीन बजावैं॥ १०॥
मृतक चिता पर मानहु सोहैं।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो घर सूनो॥ ११॥

[भुजंगप्रयात छंद]

कहूँ किन्नरी किन्नरी[1] लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥ १२
पियै एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावैं सुआ लै शुकी शारिका को॥ १३
फिर्‍यो देखिकै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझिकै वाटिका की प्रभा को।

१—किन्नरी=सारंगी।

फिरयो ओर चौंहूं चित शुद्ध गीता।
विलोकी भली सिंसिपा मूल सीता॥ १४॥

सीता दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं एक सी दुःखदानी॥ १५॥
असी बुद्धि सों चित्त चितानि मानों।
किधौं जीभ दंतावली में बखानो॥
किधौं घेरिके राहु नारीन लीनी।
कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी॥ १६॥
किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मनो संवरस्त्रीन मैं काम वामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥ १७॥
तहाँ देव-द्वेषी दशग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो॥
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥ १८॥

रावण सीता संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजे।
इतो शोच तो राम काजे न कीजे॥

बसैं . दंडकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महा बावरो होय सोऊ॥ १६॥
कृतघ्नी कुदाता. कुकन्याहि चाहै।
हितू नम्र मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥ २०॥
तुम्हैं देखि दूषे हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै॥ २१
अदेखी नुदेखीन की होहु रानी।
करैं सेव धानी मघोनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं॥ २२।

[मालिनी छन्द]

सीता—तृण विच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दशमुखशठ को तू कौन की राजधानी॥
दशरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निशिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै॥ २३।
अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर शर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥

विड़्कन[1] घन घूरे भक्ति क्यों बाज जीवै ।
शिवशिर शशि श्री को राहु कैसे सो छीवै ॥ २४ ।
उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौलों अभागे ।
मम वचन विसर्पी[2] सर्प जौलों न लागे ।
विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरो ।
निघृट मृतक तोकों रोष मारै न मेरो ॥ २५ ।

[दोहा]

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राक्षसिन बोलि ।
ज्यों समुझै समुझाइयो, युक्ति छुरी सों छोलि ॥ २

मुद्रिका प्रदान

[चामर छन्द]

देखि देखि कै अशोक राज पुत्रिका कह्यो ।
देहि मोहिं आगि तैं जो अंग आगि है रह्यो ।
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई ।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥ २७ ॥

[तोमर छंद]

जय लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लपि तव ताहि । मणि जटित मुंदरी आहि ॥२८॥
जव बांचि देख्यौ नाउ । मन पर्यो संभ्रम भाउ ॥
आवाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥ २९ ॥

१—विड़=विष्ठा । २—बिसर्पी=फैलने वाले ।

बिछुरी सो कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठाउ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ। अब काहि बूझन जाउँ॥ ३०॥
चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास॥
तहँ शाख बैठो नीठि[१]। तब परयो वानर डीठि॥ ३१॥

सीता हनुमान संवाद

तब कह्यो को तू आहि। सुर असुर मो तन चाहि॥
कै यक्ष पक्ष विरूप। दशकंठ वानर रूप॥ ३२॥
कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद॥
कहि वेगि वानर पाप। नतु तोहिं देहौं शाप॥
डरि वृक्ष शाखा झूमि। कपि उतरि आयो भूमि॥३३॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कह्यो हौं पवन पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ दूत॥
रघुनाथ कौन दशरत्थ नंद।
दशरत्थ कौन अज तनय चंद॥ ३३॥
केहि कारण पठये यहि निकेत।
निज देन लेन संदेश हेत॥
गुण रूप शील शोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लक्षण बताउ॥ ३४॥
अति यदपि सुमित्रा नंद भक्त।
अति सेवक हैं अति शूर शक्त॥

१—नीठि=बड़ी मुश्किल से।

अरु यदपि अनुज तीन्यो समान।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥ ३५ ॥
ज्यों नारायण उर श्री बसंति।
त्यों रघुपति उर कछु द्युति लसंति ॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप।
सुर असुर न पूजैं राम रूप ॥ ३६ ॥

[निशिपालिका छंद]

सीता-मोहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई।
प्रीति कहि धौं सुनर वानरनि क्यों भई ॥
बात सब वर्णि परतीति हरि त्यों दई।
आंसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३७ ॥

[दोहा]

आंसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरणति है बहु भाइ ॥३८॥

मुद्रिका वर्णन

[पद्धटिका छन्द]

यह सूरकिरण तम दुःखहारि।
शशिकला किधौं उर शीतकारि ॥
फल कीरति सी शुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजो राम ॥ ३९ ॥
कै नारायण उर सम लसंति।
शुभ अंकन ऊपर श्री बसंति ॥

घर चिद्या सी आनंद दानि।
युत अष्टापद[1] मनु शिवा मानि ॥४०॥
जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि॥
प्रिय प्रतीहारनी सी निहारि।
श्री रामोजय उच्चारकारि॥४१॥
पिय पठई मानौ सखि सुजान।
जगभूषण को भूषण निधान॥
निजु[2] आई हमको सीख देन।
यह किधौं हमारो मरम लेन॥४२॥

[दोहा]

सुखदा शिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥४३॥
यहु धरणा सहज प्रिया, तमगुनहरा प्रमान।
जग मारग दरशावनी, सूरज किरण समान॥४४॥
श्री पुर में बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करि है परतीति॥४५॥

[पद्धटिका छंद]

कहि कुशल मुद्रिके रामगात।
पुनि लच्छमण सहित समान तात॥

१—अष्टापद=पशु, सोना। २—निजु=निश्चय।

यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
कोहि कारण धौं हनुमंत संत॥ ४६॥

[दोहा]

हनूमान–तुम पूंछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम॥
कंकन की पदवी दई, तुम बिन याकहँ राम॥ ४७॥

राम विरह व

[दंडक]

दीरघ दरीन बसैं केशोदास केशरी ज्यों,
केशरी को देखि बन करी ज्यों कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।
केका सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यों तपत हैं।
भौंर ज्यों भँवत बन योगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत हैं॥ ४८॥

[दोहा]

दुख देखे सुख होहिगो, सुक्ख न दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे, होत परमपद लीन॥ ४९॥
बरषा वैभव देखिकै, देखी शरद सकाम।
जैसे रण में काल भट, भेंटि भेंटियत बाम॥ ५०॥
दुःख देखिकै देखिहौ, तब सुख आनँदकंद।
तपन ताप तपि द्यौस निशि, जैसे शीतल चंद॥ ५१॥

अपनो दशा कहा कहौं, दीप दशा सी देह।
जरत जाति वासर निशा, केशव सहित सनेह ॥ ५२ ॥
सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि, सुमुखि सुदंति सुश्रोणि।
दरशावै गो वेगिही, तुमको सर्पसिंजयोनि ॥ ५३ ॥

[हरिगीत छन्द]

कछु जननि दे परतीति जासों रामचन्द्रहि आवई।
शुभ शीश की मणि दई यह कहि सुयश तव जग गावई ॥
सब काल ह्वै हौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥ ५४ ॥
कर जोरि पगपरि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ॥
रण मारि अक्षकुमार बहु विधि इंद्रजित सों युद्धकै।
अति ब्रह्मशस्त्र प्रमाण मानि सो वश्य भो मन शुद्ध कै ॥ ५५ ॥

हनुमान रावण संवाद

[विजय छन्द]

रे कपि कौन तु अक्ष को घातक ? दूत बली रघुनंदन जी को।
को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा खरदूषण दूषण भूषण भू को ॥
सागर कैसे तस्यो ? जैसे गोपद, काज कहा ? सियचोरहि देखो।
कैसे बँधायो ? जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो ॥५६॥

[चामर छन्द]

रावण-कोरिकोरि यातनानि फोरि फारि मारिये।
काटिकाटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिये ॥

खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूंजि भूंजि खाहु रे।
पौरि टांगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥ ५७ ॥

विभीषण-दूत मारिये न राजराज छोड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दंड कीजई।
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बुद सोखि गो कहा महा समुद्र छीजई ॥ ५८ ॥

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी।
लैं अपार रार ऊन दून सूत सों कसी।
पूछ पोनपूत की सँवाँरि बारि दी जहीं।
अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥ ५९ ॥

[चंचरी छंद]

धाम धामनि आगिकी बहु ज्वाल माल विराजहीं।
पौन के झकझोर ते झँझरी झरोखन भ्राजहीं ॥
बाजि बारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥ ६० ॥

लंका दाह

[भुजंग प्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है ज्यों।
शरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों ॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजैं ॥ ६१ ॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनो ईश रोषाग्नि में काम डाढ़े॥
कहूँ कामिनी ज्वाल मालानि भोरें।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरें॥ ६२॥

कहूँ भौन राते रचे धूम छाहीं।
शशी सूर मानौं लसैं मेघ माहीं॥
जरें शस्त्रशाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव ज्वाला॥ ६३॥

चली भागि चौहूं दिशा राजरानी।
मिलीं ज्वाल माला फिरैं दुःखदानी॥
मनो ईश बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं॥ ६४॥

[सवैया]

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी है।
पावक में उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी है॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी है॥६५॥

[दोहा]

हनुमत लाई लंक सब, बच्यो विभीषण धाम।
ज्यों अरुणोदय बेर में, पंकज पूरब याम॥ ६६॥

[संयुता छंद]

हनुमंत लंक लगाइ कै। पुनि पूछ सिंधु बुझाइ कै।
शुभ देख सीतहि पाँ परे। मनि पाय आनंद जी भरे ॥६७॥
रघुनाथ पै जब ही गये। उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करणी करी। शिर पाय की धरणी धरी ॥६८॥

[दोहा]

चिन्तामणि सी मणि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥ ६९ ॥

सीता संदेश

[घनाक्षरी]

भौंरनी ज्यों भ्रमति रहति बनवीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिणी ज्यों हेरति न केशरी के काननहिं,
केका सुनि व्याली ज्यों विलानहीं चहति है।
पीउ पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरतिन[१] से ताजू की मूरति गहति है ॥ ७० ॥

[दोहा]

श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आशु ही, झूँठो ह्वैहै नाथ ॥ ७१ ॥

१— सूरतिन=सूरतें, दशाओं।

[दंडक]

राम—सांचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानर नहीं हौ तुम मेरे बाण रोप सम,
बलीमुख सूर बली मुख निजु गाये हौ।
शाखामृग नाहीं बुद्धि बलनके शाखा मृग,
कैधौं वेद शाखामृग केशव को भाये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत यशवंत तुम,
गये एक काज को अनेक करि आये हौ॥७२॥

[तोमर छंद]

हनूमान—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहिं ल्याई बार॥
कह कह्यो मैं बलरंक। अतिमृतक आरी लंक।७३॥

राम पयान

तिथि विजय दशमी पाइ। उठि चले श्री रघुराइ॥
हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ के ते पतंग॥७४॥

[दंडक]

सुग्रीव—कहै केशोदास तुम सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरी अवहिं सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहि[1] आस पास,
दिशि दिशि बरषा ज्यों बलनि बलति है।

१—रोदसिहि=भूमि और आकाश।

पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज राजनि दलति है।
जहां तहां ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है॥ ७५॥

लक्ष्मण—भार के उतारिवे को अवतरे रामचन्द्र,
किधौं केशोदास भूरि भरत प्रवल दल।
टूटत हैं तरुवर गिरे गण गिरिवर,
सूखे सव सरवर सरिता सकल जल।
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात शेष के अशेष फण,
भागि गई भोगवती अतल वितल तल॥ ७६॥

[दोहा]

वल सागर लक्ष्मण सहित, कपि सागर रणधीर।
यश सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर॥ ७७॥

समुद्र वर्णन

[विजया छंद]

भूति विभूति पियूषहु की विष,
ईश सरीर कि पाप वियोहै।
है किधौं केशव कश्यप को घर,
देव अदेवन के मन मोहै।

संत हियो कि बसै हरि सन्तत;
शोभ अनन्त कहै कवि को है।
चन्दन नीर तरंग तरंगित,
नागर कोउ कि सागर सोहै ॥ ७८ ॥

[गीतिका छंद]

जलजाल काल कराल माल तिमिंगिलादिक सों बसै।
उर लोभ क्षोभ विमोह कोह सकाम ज्यों खल को लसै॥
बहु संपदा युत जानिये अति पातकी सम लेखिये।
कोउ मांगनो[1] अरु पाहुनो[2] नहिँ नीर पीवत देखिये॥७९॥

॥ इति सुंदर कांड ॥

१—मांगन=मंगन, भिक्षुक। २—पाहुनो=मेहमान, अतिथि।

लंका कांड

रावण प्रति मंदोदरी का उपदेश

[विजय छंद]

मंदोदरी—राम की वाम जो आनी चोराइ
सो लंक में मीचु की बेलि बई जू ॥
क्यों रण जीतहुगे तिनसों जिन
की धनु रेख न नांघि गई जू ॥
बीसबिसे बलवन्त हुते जो
हुती दग केशव रूपरई जू ॥
तोरि शरासन शंकर को पिय
सीय स्वयंवर क्यों न लई जू ॥ १ ॥

बालि बली न बच्यो पर खोरहि
क्यों बचिहो तुम आपनि खोरहि ॥
जा लगि छीर समुद्र मथ्यो कहि
कैसे न बांधि हैं बारिधि थोरहि ॥
श्री रघुनाथ गनौ असमर्थ न
देखि बिना रथ हाथिन घोरहि ॥
तोर्यो शरासन शंकर को जेहि
सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि ॥ २ ॥

विभीषण शरणागमन

[सवैया]

दीनदयालु कहावत केशव हौं अति दीन दशा गह्यो गाढ़ो॥
रावण के अघ ओघ समुद्र में बूड़त हौं कर ही गहि काढ़ो॥
ज्यों गज की प्रह्लाद की कीरति त्योंही विभीषण को यश बाढ़ो॥
आरत बंधु पुकार सुनो किन आरत हौं तो पुकारत ठाढ़ो॥ ३॥
केशव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सके न दुखारे॥
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्यांहीं तहाँ तिहि भाँति पधारे॥
मेरिय बार अबार कहा कहुँ नाहिं तू काहु के दोष विचारे॥
बूड़त हौं महामोह समुद्र में राखत काहे न राखनहारे॥ ४॥

[हरिलीला छंद]

श्री रामचंद्र अति आरतवंत जानि।
लीन्हों बोलाय शरणागत सुःखदानि॥
लंकेश आउ चिरजीवहि लंक धाम।
राजा कहाउ जौलगि जग राम नाम॥ ५॥

सेतुबंध

[दोहा]

जहँ तहँ बानर सिंधु मैं, गिरि गण डारत आनि॥
शब्द रह्यो भरिपूरि महि, रावण को दुखदानि॥ ६॥

[तोटक छन्द]

उछले जल उच्च अकाश चढ़े।
जल जोर दिशा विदिशान मढ़े॥

जनु सिंधु अकाशनदी अरि कै।
बहु भाँति मनावत पाँ परि कै॥ ७॥
बहु व्योम विमान ते भीजि गये।
जल जोर भये अँगरागमये॥
सुर सागर मानहु युद्ध जये।
सिगरे पट भूषण लूटि लये॥ ८॥
अति उच्छलि छिच्छि त्रिकूट छयो।
पुर रावण के जल जोर भयो॥
तब लंक हनूमत लाइ[1] दई।
नल मानहु आइ बुझाइ लई॥ ९॥
लगि सेतु जहाँ तहँ शोभ गई।
सरितानि के फेरि प्रवाह बई॥
पति देवनदी रति देखि भली।
पितु के घर को जनु रूसि चली॥ १०॥
सब सागर नागर सेतु रची।
बरणै बहुधा युत शक्र शची॥
तिलकावलि सी शुभ शीश लसै।
मणिमाल किधौं उर में विलसै॥ ११॥

[तारक छन्द]

उरते शिवमूरति श्रीपति लीन्ही।
शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्हीं॥

१—लाइ=अग्नि।

इनके दरशै परशै पग जोई।
भव सागर के तरि पार सो होई॥ १२॥

[दोहा]

सेतु मूल शिव शोभिजै, केशव परम प्रकाश॥
सागर अगत जहाजको, करिया[1] केशवदास॥ १३॥

रामचन्द्र वर्णन

[दंडक]

कुंतल ललित नील भृकुटी धनुष नैन,
कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषण च,
मध्य देश केशरी सुगजगति भाई है॥
विग्रहानुकूल सब लक्षलक्ष ऋक्षबल,
ऋक्षराज मुखी मुख केशो दास गाई है।
रामचन्द्र जू की चमू राज्यश्री विभीषण की,
रावण की मीचु दरकूच चलि आई है॥ १४॥

[चंचला छंद]

ताम्रकोट लोहकोट स्वर्णकोट आसपास।
देव की पुरी घिरी कि पर्वतारि के विलास॥
बीच बीच हैं कपीश बीच बीच ऋक्ष जाल।
लंक कन्यका गरे कि पीत नील कंठमाल॥ १५॥

१—करिया=(कर्ण) पतवार।

रावण अंगद संवाद

[दोहा]

अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेश।
मञ्जु मधुकर करहाट[१] पर, शोभित श्यामल वेष ॥ १६ ॥

[नाराच छंद]

प्रतीहार-पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुवेर वेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाइ दूरि वैठु नारदादि संगहीं।
न वोलु चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ॥ १७ ॥

[चित्रपदा छंद]

अंगद यों सुनि वानी। चित्त महारिस आनी ॥
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ वैसे[२] ॥ १८ ॥

[चित्रपदा छंद]

रावण-कौन हो पठये सो कौने ह्यां तुम्हैं कह काम है ॥
अंगद-जाति वानर लंकनायक दूत अंगद नाम है ॥
रावण—कौन है वह वांधि कै हम देह पूछि सवै दही।
लंक जारि सँहारि अक्ष गयो सो वात वृथा कही ॥१९॥
कौन के सुत वालि के वह कौन वालि न जानिये।
कांख चापि तुम्हैं जो सागर सात न्हात वखानिये ॥
है कहां वह वीर अंगद देवलोक वताइयो।
क्यों गयो रघुनाथ वान विमान वैठि सिधाइयो ॥२०॥

१—करहाट=कमल की छतरी २—वैसे=वैठे।

लंकनायक को विभीषण देव दूषण को दहै।
मोहि जीवत होहिं क्यों जग तोहि जीवत को कहै॥
मोहिं को जग मारि है दुर्बुद्धि तेरिय जानिये।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिये ॥२१॥

अंगद— [सवैया]

श्री रघुनाथ को बानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहार दयो जू।
सीय निहारि संहारि के राक्षस शोक अशोक बनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारि कै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू ॥२२॥

[गंगोदक छंद]

राम राजान के राज आये इहां
धाम तेरे महा भाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै
मित्र मंत्री जिते पूंछि देखौ सबै।
राखिजै जाति को भाँति[१] को बंश को
साधिजै लोक में लोक पलोक को।
आनि कै पाँ परो देसलै कोशलै
आमुही ईश सीता चलै ओकको ॥ २३ ॥

रावण—लोक लोकेश स्यों शोचि ब्रह्मा रचे
आपनी आपनी सींव सो सो रहै।

१—भाँति=मर्याद।

चारि बाहैं धरे विष्णु रक्षा करैं
बात सांची यहै वेदबाणी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पायँ काके परौं
आजु संसार तो पायँ मेरे परै॥ २४॥

[मदिरा छंद]

राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं
कौन कबै रिपु जीत्यो कहां ?
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन
गर्व हरो, द्विज दीन महा॥
दीन सो क्यों ? छिति छत्र हत्यो
बिन प्राणनि हैहयराज कियो।
हैहय कौन ? वहै बिसरयो जिन
खेलत ही तुम्हैं बांधि लियो॥ २५॥

अंगद— [विजय छंद]

सिंधु तरयो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बांध्योइ बांधत सो न बँध्यो उन बारिधि बांधि कै बाट करी॥
अजहूं रघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं दशकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूंछि जरी[1] न जरी जरी लंक जराइ जरी॥ २६॥

१—जरी=जड़ी हुई, युक्त।

रावण—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपि पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै अपनो पदु लै पितु जालगि मारे॥
तोसें सपूतहि जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारें।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हनै बपमारे॥२७॥

[दोहा]

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्यो, लोग कहैं तजि त्रास॥ २८॥

अंगद-इनको बिलगु न मानिये, सुनि रावण पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु॥ २९॥

रावण— [द्रुतविलंबित छंद]

उरसि अंगद लाज कछू गहो। जनक घातक बात वृथा कहो॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल बानर राज तुम्हें करौं॥३०॥

[निशिपालिका छंद]

अंगद—शत्रु सम मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत विधि नूत[१] कबहूं न उर आनहीं॥
आपमुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज शीश तब और कहँ राखहू॥ ३१॥

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण—महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै॥

१—नूत=नूतन, नवीन।

नृपानाथ लीन्हें रहे छत्र जाको।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥ ३२॥
सका[1] मेघमाला शिखी[2] पाककारी।
करै कोतवाली महादंडधारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥ ३३॥

[विजय छंद]

अंगद—पेट चढ़यो पलना पलिका चढ़ि
पालकि हू चढ़ि मोह मढ़यो रे।
चौक चढ़यो चित्रसारी चढ़यो
गज बाजि चढ़यो गढ़ गर्व चढ़यो रे।
व्योम विमान चढ़यो ई रह्यो
कहि केशव सो कबहूं न पढ़यो रे।
चेतत नाहीं रह्यो चढ़ि चित्त सों
चाहत मूढ़ चिताहू चढ़यो रे॥ ३४॥

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण—निकारयो जो भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़िकै जू कहा त्रास ताको॥
लिये बानराली कहौं बात तोसों।
सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों॥ ३५॥

१—सका=सक्का, पानी भरनेवाला। २—शिखी=अग्नि।

अंगद—   [विजय छंद]

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ को ठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहीं संग रैहै।
केशव काम को राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै
चेतिरे चेति अजौं चित अन्तर अंतकलोक अकेलोई जैहै॥३६

[भुजंगप्रयात छंद]

रावण—डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै।
परद्रव्य छोंड़ै परस्त्रीहि लाजै॥
परद्रोह जासों न होवै रतीको।
सु कैसे लरै वेष कीन्हें यती को॥ ३७॥

[दोहा]

गेंद करेउँ मैं खेल को, हरगिरि केशोदास।
शीश चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥३८

[दंडक]

अंगद-जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत शीश काटत घनेरे घाव[1],
मगर[2] के खेले कहा भट पद पावहीं।
जीत्यो जो सुरेश रण शाप ऋषि नारि हो को,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं।

१—घाघ=इन्द्र आदी। २—मगर=मादू।

गहैा राम पायँ सुख पाइ करैं तपी तप,
सीताजू को देहु देव दुंदुभी बजावहीं ॥ ३६ ॥

[वंशस्थ छंद]

रावण—तपी जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं।
अदेव द्वेपी सब देव संहरौं ॥
सिया न देहौं यह नेम जो धरौं।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं ॥ ४० ॥

अंगद— [विजय छंद]

पाहन ते पतिनी करि पावन टूक कियो हर को धनु को रे ॥
छत्र विहीन करी छण में छिति गर्व हस्यौ तिनके बल को रे ॥
पर्वतपुंज पुरैनि के पात समान तरे अजहूँ धरकौ रे
होइँ नरायण हूं पै न ये गुण कौन इहां नर वानर को रे ॥ ४१ ॥

[चंचरी छंद]

रावण-देहिं अंगद राज तोकहं मारि वानरराज को।
बांधि देहिं विभीषणै अरु फोरि सेतु समाज को ॥
पूंछ जारहिं अक्षरिपु की पाइं लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुं रामहिं पार जाइं समुद्र के। ४२॥

अंगद-लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बांधत शोधि कै नल छीर छीट बहाइयो ॥
ताहि तोहिं समेत अंध उखारि हैां उलटी करौं।
आजु राज कहां विभीषण बैठिहैं तेहिते डरौं ॥ ४३ ॥

[दोहा]

अंगद रावण को मुकुट, लेकरि उड़्यो सुजान।
मनो चलो यमलोक को, दशशिर को प्रस्थान ॥ ४४ ॥
अंगद लै या मुकुट को, परे राम के पाह।
राम विभीषण के शिरसि, भूषित कियो बनाह ॥ ४५ ॥

(लंकावरोध)

[पद्धटिका छंद]

दिशि दक्षिण अंगद पूर्व नील।
पुनि हनूमंत पश्चिम सुशील॥
दिशि उत्तर लक्ष्मण सहित राम।
सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम ॥ ४६ ॥

सँग यूथप यूथप बल विलास।
पुर फिरत विभीषण आस पास॥
निशि वासर सब को लेत सोधु।
यहि भांति भयो लंका निरोधु ॥ ४७ ॥

तब रावण सुनि लंका निरोध।
उपजो तन मन अति परम क्रोध॥
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि।
दक्षिणहिं महोदर गयो दौरि ॥ ४८ ॥
भयो इन्द्रजीत पश्चिम दुवार।
है उत्तर रावण बल उदार॥

कियो विरूपात्त थित मध्यदेश।
करै नारान्तक चहुंधा प्रवेश॥ ४९॥

[प्रमिताक्षरा छंद]

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये। वहु ऋच्छ कंगूरन लागि गये॥
तव स्वर्ण लंक महँ शोभ भई। जनु अग्निज्वाल महँ धूममई ॥५०॥

(मेघनाद युद्ध)

[दोहा]

मरकत मणि के शोभिजै, सवै कँगूरा चारु॥
आइ गयो जनु घात को, पातक को परिवारु॥ ५१॥

(कुसुमविचित्रा छंद)

तव निकसो रावणसुत शूरो। जेहि रन जीत्यो हरि[1] वलपूरो॥
तपवल माया तम उपजायो। कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥५२॥

[दोधक छन्द]

काहु न देखि परै वह योधा।
यद्यपि हैं सिगरे वुधि वोधा॥
शायक सो अहिनायक साध्यो।
सोदर स्यों रघुनायक बांध्यो॥ ५३॥
रामहिं बांधि गयो जव लंका।
रावण की सिगरी गई शंका।
देखि बँधे तव सोदर दोऊ।
यूथप यूथ त्रसे सव कोऊ॥ ५४॥

१—हरि = इन्द्र।

[स्वागता छंद]

इंद्रजीत तेहि लै उर लायो । आजु काज सब मो मन भा
कै विमान अधिरूढ़ि सिधाये । जानकीहि रघुनाथ दिखाये ।

[दोहा]

कालसर्प के कवल तें, छोरत जिनको नाम ।
बँधे ते ब्राह्मण वचन बश, माया सर्पहि राम ॥ ५६ ॥

[स्वागता छंद]

पन्नगादि तबही तहँ आये । व्याल जाल सब मारि भगाये ।
लंक मांझ तबहीं गइ सीता । शुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥५७॥

(रावण प्रति महोदर का उपदेश)

महोदर—कहै जो कोऊ हितवंत बानी ।
कहौ सो लागैं अति दुःखदानी ॥
सुनो न दावै बहुधा कुदावै ॥
सुधी तबै साधत मौन भावै ॥ ५८ ॥
कहो शुक्राचार्य्य सु हौं कहौं जू ।
सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू ॥
नृपाल भू मैं विधि चारि जानौ ।
सुनो महाराज सबै बखानौं ॥ ५९ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

यहै लोक एकै सदा साधि जानै ।
बली बेनु ज्यों आपुही ईश मानै ॥

करैं साधना एक परलोकही को।
हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को॥ ६० ॥
दुहूं लोक को एक साधैं स्याने।
विदेहीन ज्यों वेद बानी बखाने॥
नठैं[1] लोक दोऊ हठी एक ऐसे।
त्रिशंकै हँसैं ज्यों भलेऊ अनैसे॥ ६१ ॥

[दोहा]

वहु राज को मैं कहूँ, तुमसों राजचरित्र॥
रुचै सो कीजै चित्तमें, चिंतहु मित्र अमित्र॥ ६२ ॥
चारि भांति मंत्री कहे, चारि भांति के मंत्र॥
मोहिं सुनाये। शुकजू, सोधि सोधि सब तंत्र॥ ६३ ॥

[छप्पै]

एक राज के काज हतैं निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजे॥
एक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत॥
एक प्रभु समेत अपनो भलो करत दाशरथि दूत ज्यों।
एक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥ ६४॥

[दोहा]

मंत्र जो चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे समान॥
विष से दाड़िमबीज से, गुड़ से नींब समान॥ ६५॥

१—नटैं=नष्ट करैं।

[चंद्रवर्त्म छंद]

राजनीति मत तत्व समुझिये।
देश काल गुणि युद्ध अरुझिये॥
मंत्रि मित्र अरि को गुण गहिये।
लोक लोक अपलोक न वहिये॥ ६६॥
रावण—चारि भांति नृपता तुम कहियो।
चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो॥
राम मारि सुर एक न बचिहैं।
इंद्रलोक को वासहिं रचिहैं॥ ६७॥

[प्रमिताक्षरा छन्द]

उठि कै प्रहस्त सजि सैन चले।
बहु भांति आइ कपि पुंज दले॥
तब दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो।
असुहीन गिरो भुव मुंड सन्यो॥ ६८॥

[वंशस्था छन्द]

महाबली जूझत ही प्रहस्त को।
चढ्यो तहीं रावण मींड़ि हस्त को॥
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजैं।
गयंद मोघांध जहां तहां गजैं॥ ६९॥

[सवैया]

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष रई है।
छूटतही हनुमंत सों बीचहिं पूछ लपेटि कै डारि दई है॥
दूसरी ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावतही हाइ हाइ भई है।
राख्योभ ले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूलसी ओड़ि लई है। ७०॥

[दोधक छन्द]

यद्यपि है अति निर्गुणताई। मानुष देह धरे रघुराई।
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो ॥७१॥

राम विलाप

लोचन बाहु तुहीं धनु मेरो।
तू बल विक्रम वारक हेरो॥
तूबिन हौं पल प्राण न राखौं।
सत्य कहौं कछु झूंठ न भाखौं ॥ ७२ ॥
मोहिं रही यतनी मन शंका।
देन न पाई विभीषण लंका॥
बोलि उठौ प्रभु को प्रण पारो।
नातरु होत है मो मुख कारो ॥ ७३ ॥

[षट्पद]

राम-करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौ गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउं इन्द्र अब।
विद्याधरनि अबिद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब॥

निज्जु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटजाइ जल।
सुनि मूरज सूरज उदत ह्वै करौं असुर संसार बल ॥ ७४ ॥

हनुमंत पैज

[भुजंगप्रयात छंद]

हन्यो विघ्नकारी बली वीर यामैं।
गयो शीघ्रगामी गये एक यामैं॥
चल्यो लै सबै पर्वतै कै प्रणामैं॥
न जान्यो विशल्यौषधी कौन तामैं॥ ७५ ॥

द्रोणगिरि आनयन

लसै औषधी चारु भो व्योमचारी।
कहैं देखि यों देव देवाधिकारी॥
पुरी भौम की सी लिये शीघ्रराजै।
महामंगलार्थी हनूमन्त गाजै॥ ७६ ॥
लगी शक्ति रामानुजै रामसाथी।
जड़ै ह्वैगये ज्यों गिरै हेम हाथी॥
तिन्हैं ज्याइवे को सुनो प्रेमपाली।
चल्यो ज्वाल मालीहि लै कीर्तिमाली॥ ७७ ॥
किधौं प्रातहीकाल जी में विचार्यो।
चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहार्यो॥
किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हें।
महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हें॥ ७८ ॥

विनापत्र हैं यत्र पालाश फूले।
रनैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूले॥
सदानंद रामैं महानंद को लै।
हनूमंत आये वसंतै मनो लै॥ ७९॥

[मोटनक छंद]

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये।
दूनी शुभ शोभ शरीर लिये॥
कोदंड लिये यह वात रटै।
लंकेश न जीवत जाइ घरै॥ ८०॥

श्रीराम तहीं उर लाइ लियो।
सूंघ्यो शिर आशिष कोटि दियो॥
कोलाहल यूथप यूथ कियो।
लंका हहली दशकंठ हियो॥ ८१॥

रावणप्रति कुंभकर्ण का उपदेश

[मनोरमा छंद]

कुंभकर्ण—सुनिये कुलभूषण देव विदूषण।
वहु आजिविराजिन[१] के तुम पूषण॥
भवभूप जे चारि पदारथ साधत।
तिनको कवहुं नहिं वाधक वाधत॥ ८२॥

१—आजि = समर + विराजी = शोभा पाने वाले = शूरवीर लोग

[पंकजवाटिका छंद]

धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत।
संतति हित रति कोविद गावत॥
संतति उपजत हौं निशि वासर।
साधत तन मन मुक्ति महीधर[1] ॥ ८३ ॥

[दोहा]

राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र।
कामी कुटिल न सेइये, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥ ८४ ॥

[घनाक्षरी]

कामी वामी झूंठ क्रोधी कोढ़ी कुलद्वेषी खलु
कातर कृतघ्नी मित्रद्रोही द्विजद्रोहिये।
कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही क्रूर
कुटिल कुमंत्री कुलहीन केशी क्रोहिये॥
पापी लोभी शठ अंध बावरो बधिर गूंगा
बौना अविवेकी हठी छली निरमोहिये।
सूम सर्वभक्षी दपवादी औ कुवादी जड़
अपयशी ऐसो भूमि भूपति न सोहिये ॥ ८५ ॥

[निशिपालिका छंद]

वानर न जानु सुर जानु शुभगाथ हैं।
मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं॥

१—महीधर = राजा।

जानकिहि देहु करि नेहु कुल देह सो।
आजु रण साज पुनि गाजु हँसि मेह सो ॥ ८६ ॥

[दोहा]

रावण-कुंभकरण करि युद्ध कै, सोइरहैा घर जाइ।
वेगि विभीषण ज्यों मिल्यो, गहैा शत्रु के पाइ ॥ ८७ ॥

कुंभकर्ण-युद्ध

[चामर छंद]

कुंभकर्ण रावणैं प्रदक्षिणाहि दै चल्यो।
हाइ हाइ ह्वै रह्यो अकाश आशुही हल्यो।
मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट शीश शोभनो।
लक्ष पक्ष सो कलिन्द्र इन्द्र पै चढ्यो मनों ॥ ८८ ॥

[नाराच छंद]

उड़ैं दिशा दिशा कपीश कोरि कोरि श्वासहीं।
चपैं चपेट पेट वाहु जानु जंघ सो तहीं ॥
लिये हैं और पेंचि पेंचि वीर वाहु वातहीं।
भपे ते अन्तरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जातहीं ॥ ८९ ॥

[भुजंगप्रयात छन्द]

कुंभकर्ण— न हैा ताड़का हैा सुवाहै न मानों।
न हैा शंभु कोदंड सांचो वखानों ॥
न हैा ताल वाली खरे जाहि मारो।
न हैा दूषणो सिन्धु सूधो निहारो ॥ ९० ॥

कछु माँगिये वर वीर सत्वर भक्ति श्री रघुनाथ की।
पहिराइ माल विशाल अर्चहि कै गये शुभ गाथ की ॥१००॥

[कलहंस छंद]

हति इंद्रजीत कहँ लक्ष्मण आये।
हँसि रामचन्द्र बहुधा उरलाये॥
सुनि मित्र पुत्र शुभ सोदर मेरे।
कहि कौन कौन सुमिरौं गुण तेरे॥ १०१॥

[दोहा]

नींद भूख अरु प्यास को, जो न साधते वीर॥
सीतहि क्यों हम पावते, सुनु लक्ष्मण रणधीर॥ १०२॥

रावण विलाप

[दंडक]

रावण—आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चंद आनंद मय ताप जग को हरौ।
गान किन्नर करहु नृत्य गंधर्व कुल,
यक्ष विधि लक्ष उर यक्षकर्दम[1] धरौ॥
ब्रह्म रुद्रादि दै देव त्रैलोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै लंक कुल दूषणहि,
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रनवरौ॥ १०३॥

१—यक्षकर्दम=एक प्रकार का अँग लेप जो यक्षों को अतिप्रिय है। "कर्पूरा गुरु कस्तूरीकंकोलैर्यक्षकर्दम."।

मकराक्ष वध

[भुजंगप्रयात छंद]

मकराक्ष—महाराज लंका सदा राज कीजै।
करौं युद्ध मेरी विदा वेगि कीजै॥
हतौं राम स्यों बंधु सुग्रीव मारौं।
अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं॥ १०४॥

[वसंततिलका छंद]

विभीषण—कोदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै।
भागे सबै समर यूथप दृष्टि दीजै॥
बेटा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो।
संहार काल जनु काल कराल धायो॥ १०५॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो।
रोक्यो रह्यो न रघुवीर जहाँ विलोक्यो॥
मार्‍यो विभीषण गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लक्ष्मण कंठ मेली॥ १०६॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग भारे।
काटे कटैं न बहु भांतिन काटि हारे॥
ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै।
लै ही चल्यो समर सिंहहि जोर जागै॥ १०७॥
गाढ़ांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्हो।
अस्तास्त मानहुं शशी कहँ राहु कीन्हो॥

हाहादि शब्द सब लोग जहीं पुकारे॥
बाढ़े अशेष अँग राक्षस के बिदारे॥
त्यों रामचन्द्र पग लागत चित्त हर्षें।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प बर्षें॥ १०८॥

रावण कृत संधि-प्रस्ताव

[दोहा

जूझतही मकराक्ष के, रावण अति दुख पाइ।
सत्वर श्रीरघुनाथ पै, दियो बसीठ पठाइ॥ १०९॥

[सुंदरी छंद]

दूतहि देखतही रघुनायक। तापहँ बोलि उठे सुखदायक॥
रावण के कुशलीसुत सोदर। कारज कौन करै अपने घर॥११०॥

दूत— [विजय छन्द]

पूजि उठे जबहीं शिव को तबहीं विधि शुक्र बृहस्पति आये।
कै बिनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये॥
होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाये।
हौं इत को पठयो उनको उत लै प्रभु मंदिर मांझ सिधाये॥१११॥

[संदेश]

शूर्पणखा जो विरूप करी तुम तात कियो हमहूँ दुख भारो।
वारिधि बंधन कीन्हौं हुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो॥
होइ जो होनी सो ह्वै ही रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो।
दै भृगुनंदन को परशा रघुनन्दन सीतहि लै पगुधारो॥ ११२॥

[दोहा]

प्रति उत्तर दूतहि दियो, यह कहि श्री रघुनाथ ॥
कहियो रावण होहिं जब, मंदोदरि के साथ ॥ ११३ ॥

[संयुता छंद]

रावण—कहि धौं विलंब कहा भयो । रघुनाथ पै जब तू गयो ॥
केहि भांति तू अवलोकियो । कहु तोहिं उत्तरका दियो ॥११४॥

[दंडक]

दूत—भूतल के इंद्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र,
मारिच कनकमृगछालहि बिछाये जू ।
कुंभहर कुंभकर्णनाशहर गोद शीश
चरण अकंप अक्ष अरि उर लाये जू ।
देवांतक नारांतक अंतक त्यों मुसक्यात,
विभीषण बैन तन कानन रुचाये जू ।
मेघनाद मकराक्ष महोदर प्राणहर,
बाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ॥ ११५ ॥

रामसंदेश— [विजय छंद]

भूमि दई भुवदेवन को भृगुनंदन भूपन सों बर लैकै ।
बामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बांधि पताल पठै कै ।
संधिकी बातन को प्रतिउत्तर आपुनही कहिये हित कैकै ।
दीन्हीं है लंक विभीषण को अब देहिं कहा तुमको यह दैकै ॥११६॥

मंदोदरी— [मालिनी छंद]

तब सब कहि हारे राम को दूत आयो।
अब समुझि परो जो पुत्र भैया जुझायो॥
दशमुख सुख जीजै राम सों हौं लरौं यों।
हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों॥ ११७॥

रावण-छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै।
रघुपति बपुरा को धावतो सिंधु पारै॥
हति सुरपति भर्ता विष्णु मायाविलासी।
सुनहि सुमुखि तोको ल्यावतो सर्वदासी॥ ११८॥

रावण यज्ञ विध्वंस

[चामर छंद]

प्रौढ़रूढ़िकोश[1] मूढ़ गूढ़ गेह में गयो।
शुक्रमंत्र शोधि शोधि होम को जहीं भयो॥
वायुपुत्र बालिपुत्र जामवंत धाइयो।
लंक में निशंक अंक[2] लंक नाथ पाइयो॥ ११९॥
मत्त दंति पंक्ति वाजिराजि छोरिकै दई।
भांति भांति पक्षि राजि भाजि भाजिकै गई।
आसनै बिछावने बितान तान तूरियो।
यत्रतत्र छत्र चारु चौंर चारु चूरियो॥ १२०॥

१—प्रौढ़रूढ़िकोश=पक्की दिठाई का समूह=घोसदाठ।
२—अंक=राम चिन्हादि।

[भुजंगप्रयात छंद]

...ौं देखिकै शंकि लंकेश बाला।
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला॥
तहां दौरिगो बालि को पूत फूल्यो।
सबै चित्रको पुत्रिका देखि भूल्यो॥ १२१॥

गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको।
तजै जा दिशा को भजै बाम ताको॥
भली कै निहारी सबै चित्रसारी।
लहै सुंदरी क्यों दरी को बिहारी॥ १२२॥

तजै दृष्टि कों चित्र की सृष्टि धन्या।
हँसी एक ताको तहीं देव कन्या॥
तहीं हासही देव कन्या दिखाई।
गही शंकि कै लंकरानी बताई॥ १२३॥

सुश्रानी गहे केश लंकेश रानी।
तमश्री मनों सूर शोभानि सानी॥
गहे बाहँ पैंचें चहूं ओर ताको।
मनो हंस लीन्हे मृणाली लता को॥ १२४॥

छुटी कंठमाला लुरैं हार टूटे।
खसैं फूल फूले लसैं केशछूटे॥
फटी कंचुकी किंकिणी चारु छूटी।
पुरी काम की सो मनो रुद्र लूटी॥ १२५॥

सुनी लंक रानीन की दीन बानी।
तहाँ छांडि दीन्हो महा मौन मानी॥
उठ्यो सो गदा लै यदा लंकवासी।
गये भागि कै सर्व शाखा विलासी॥ १२६॥

मंदोदरी— [दोहा]

सीतहि दीन्हो दुख वृथा, सांचो देखो आज।
करै जो जैसी त्यों लहै, कहा रंक कह राज॥ १२७॥

रावण— [विजय छंद]

को मथुरा जो मिल्यो है विभीषण है कुलदूषण जीयँगो कौलौं।
कुंभकरन मर्यो मघवारिपु तौरी कहा न डरौं यम सौलौं॥
श्री रघुनाथ के गातनि सुंदरि जानै न तू कुशली तनु तौलौं।
शाल सबै दिगपालन के कर रावण के करवाल है जौलौं॥१२८॥

राम रावण युद्ध

[चामर छंद]

रावणै चले चले ते धाम धाम ते सबै।
साजि साजि साज सूर गाजि गाजिकै तबै॥
दीह दुंदुभी अपार भांतिभांति बाजहीं।
युद्ध भूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं॥ १२६॥

[चंचरी छन्द]

इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखिकै।
वेगि सारथि सों कहेउ रथ जाहि लै सुविशेषि कै॥

तूण अक्षय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय[1] प्रणाम को ॥ १३० ॥

कोटि भांतिन पौन ते मन ते महा लघुता[2] लसै।
बैठिके ध्वज अग्र श्रीहनुमंत अंतक ज्यों हँसै ॥
रामचन्द्र प्रदक्षिणा करि दक्ष ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्प वर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े ॥ १३१ ॥

राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़यो।
बीसबाहुन को शरावलि व्योम भूतल सो मढ़यो ॥
शैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे ॥१३२॥

[सुंदरी छंद]

बाणन साथ विधे सब वानर।
जाय परे मलयाचल की धर॥
सूरज मंडल में एक रोवत।
एक अकाशनदी मुख धोवत ॥ १३३ ॥

एक गये यमलोक सहे दुख।
एक कहैं भव भूतन सों रुख॥
एक ते सागर मांझ परे मरि।
एक गये बड़वानल में जरि ॥ १३४ ॥

१—अप्रमेय=बहुत, असंख्य। २—लघुता=शीघ्रता।

[मोटनक छंद]

श्रीलक्ष्मण कोप कर्यो जबहीं।
छोड्यो शर पावक को तबहीं॥
जार्यो शर पंजर छार कर्यो।
नैऋत्यन[1] को अति चित्त डर्यो॥ १३५॥

दौरे हनुमंत बली बलसों।
लै अंगद संग सबै दल सों॥
मानो गिरिराज तजे डर को।
घेरैं चहुं ओर पुरंदर को॥ १३६॥

[हरिछंद]

अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाइ कै।
ऋक्षपतिहिं अतरिपुहिं लक्षगति मुझाइ कै॥
बानर गण धाइन सन केशव जबहीं मुरयो।
रावण दुखदायन जगपायन समुहे जुर्यो॥ १३७॥

[ब्रह्मरूपक छंद]

इंद्रजीत-जीत आनि रोकियो सुबाण तानि।
छाँड़िदीन धीरबानि कान के प्रमान आनि॥
स्यों पताक काटि चाप चर्म वर्म मर्म छेदि।
जातभो रसातलै अशेष कंठमाल भेदि॥ १३८॥

१—नैऋत्य=राक्षस

[दंडक छंद]

सूरज [1]मुसल नील पट्टिश परिघ नल
जामवंत असि हनू तोमर प्रहारे हैं।
परशा सुखेन कुंत केशरी गवय शूल
विभीषण गदा गज भिंदिपाल तारे हैं।
मोगरा द्विविद तीर कटरा कुमुद नेजा
अंगद शिला गवाक्ष विटप बिदारे हैं।
अंकुश शरभ चक्र दधिमुख शेष शक्ति
बाण तिन रावण श्रीरामचंद्र मारे हैं॥ १३९॥

[दोहा]

द्वैभुज श्रीरघुनाथ सों, बिरचे युद्ध विलास।
बाहु अठारह यूथपनि, मारे केशोदास॥ १४०॥

[गंगोदक छंद]

युद्ध जोई जहां भांति जैसी करै
ताहि ताही दिशा रोकि राखै तहीं।
अस्त्र आपने लै शस्त्र काटै सबै
ताहि केहूं कहूं घाव लागै नहीं॥
दौरि सौमित्र लै बाण कोदंड ज्यों
खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली।
शैल शृंगावली छोड़ि मानों उड़ी
एक ही बेर कै हंस वंशावली॥ १४१॥

१—सूरज=सुग्रीव

[त्रिभंगी छंद]

लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण रावण सों रिस छोड़ दई।
बहु बाणनि छंडे जे सिर खंडे ते फिर मंडे शोभ नई॥
यद्यपि रणपंडित गुण गण मंडित रिपु दल खंडित भूल गई।
तजि मन वच कायक सुरसहायक रघुनायक सों वचन कहे॥१४२॥
ठाढ़ो रण गाजत कहुँ न भाजत तन मन लाजत सबलायक।
सुनि श्रीरघुनंदन मुनिजन वंदन दुष्ट निकंदन सुखदायक॥
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि सायक।
रावण नहिं मारत देव पुकारत है अति आरत जगनायक॥१४३॥

रावण वध

छप्पै

राम—जेहि शर मधु मद मर्दि महासुर मर्दन कीन्हेउ।
मारेहु करकश नर्क शंखहति शंख जो लीन्हेउ॥
निष्कंटक सुर कटक कर्‍यो कैटभ वपु खंड्यो।
खर दूषण त्रिशिरा कबंध तरु खंड विहंड्यो।
कुंभकरण जेहि संहर्‍यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बाण प्राण दशकंठ के कंठ दशों खंडित करौं॥ १४४॥

[दोहा]

रघुपति पठयो आशुही, असुहर शुद्धिनिधान॥
दशशिर दशहू दिशन को, बलि दै आयो बान॥ १४५॥

[मदनमनोरमा छंद]

भुव भारहि संयुत राकस को
गण जाइ रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय शब्द समेतिहि केशव
राज विभीषण के सिर जाग्यो।
मय दानव नंदिनि के सुख सों
मिलि कै सिय के हिय को दुखभाग्यो।
सुर दुंदुभी सीस गजा[१] शर राम को
रावण के शिर साथहि लाग्यो ॥ १४६ ॥

[विजय छंद]

मंदोदरी—जीति लिये दिगपाल शची के
उसासन देवनदी सब सूकी।
वासरहू निशि देवन की
नर देवन की रहे संपति टूकी।
तीनहुं लोकन की तरुणीन
की बारी बँधो हुती दंड दुहू की।
सेवत श्वान शृगाल सो रावण
सोवत सेज परे अब भू की ॥ १४७ ॥

[तारक छंद]

राम—अब जाहु विभीषण रावण लैकै।
सकलत्र सबंधु क्रिया सब कैकै ॥

१—गजा=चोब (नगाड़ा बजाने की)

जन सेवक संपति कोष सँभारो।
मयनंदिनि के सिगरे दुख टारो॥ १४८॥

सीता की अग्निपरीक्षा

[तारक छंद]

राम—अब आय कहौ हनुमंत हमारे।
सुख देयहु दीरघ दुःख बिदारे॥
सब भूषण भूषित कै शुभ गीता।
हमको तुम बेगि दिखावहु सीता॥ १४६॥
हनुमंत गये तबहीं जहँ सीता।
तब जाय कही जय की सब गीता॥
पग लागि कह्यो जननी पगु धारो।
मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो॥ १५०॥
सिगरे तन भूषण भूषित कीने।
धरि कै कुसुमावलि अंग नवीने॥
द्विज देवनि वन्दि पढ़ीं शुभगीता।
तब पावक अंक चली चढ़ि सीता॥ १५१॥

[भुजंग प्रयात छंद]

सबस्त्रा सबै अङ्ग शृंगार सोहैं।
बिलोके रमा देव देवी बिमोहैं॥
पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्रगीता।
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता॥ १५२॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी।
कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी॥
मनो रत्नसिंहासनस्था शची है।
किधौं रागिनी राग पूरे रची है॥ १५३॥
गिरापूर में है पयोदेवता सी।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकाशी॥
किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै।
किधौं पद्म के कोष पद्मा विमोहै॥ १५४॥
किं सिन्दूरशैलाग्र में सिद्ध कन्या।
किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या॥
सरोजासना है मनो चारु बानी।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी॥ १५५॥
मनो औषधी वृन्द में रोहिणी सी।
कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी॥
धरापुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकाशै।
मनो ज्योति सी तच्छकाभोग[1] भासै॥ १५६॥

[सुरेन्द्रवज्रा छंद]

आसावरी माणिक कुंभ शोभै अशोक लग्ना वन देवता सी॥
पालाशमाला कुसुमालि मध्ये वसन्तलक्ष्मी शुभ लक्षणासी॥
आरक्त पत्रा शुभि चित्र पुत्री मनो विराजै अति चारु वेषा॥
संपूर्ण सिंदूर प्रभा सुमंडो गणेश भालस्थल चंद्ररेखा॥ १५७॥

१—तच्छकाभोग=तच्छक+आभोग=तच्छक नामक सर्प का फण।

[विजय छंद]

है मणिदर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप तेजन में मनों सिद्ध विनीता॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिये भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनंदकंद हुताशन मध्य सवासन सीता॥१५८

[दोहा]

इन्द्र वरुण यम सिद्ध सब, धर्म सहित धनपाल।
ब्रह्म रुद्र लै दशरथहिं, आय गये तेहि काल॥ १५६॥

[वसंततिलका छंद]

अग्नि—श्री रामचन्द्र यह संतत शुद्ध सीता।
ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्र गीता॥
हूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या।
योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया॥ १६०॥
श्रीरामचन्द्र हँसि अंक लगाय लीन्हीं।
संसार साखि शुभ पावक आनि दीन्हीं।
देवान दुंदुभि बजाय सुगीत गाये।
त्रैलोक्य लोचन चकोरनि चित्र भाये॥ १६१॥

ब्रह्माकृत रामस्तुति

[दोधक छंद]

ब्रह्मा—राम सदा तुम अन्तर्यामी।
लोक चतुर्दश के अभिरामी॥

निर्गुण एक तुम्हैं जग जानै ।
एक सदा गुणवन्त बखानै ॥ १६२ ॥
ज्योति जगै जगमध्य तिहारी ।
जाइ कही न सुनी न निहारी ॥
कोउ कहै परिमान न ताको ।
आदि न अंत न रूप न जाको ॥ १६३ ॥

[तारक छंद]

तुम हो गुणरूप गुणी तुम ठाये ।
तुम एक ते रूप अनेक बनाये ॥
एक है जो रजोगुण रूप तिहारो ।
तेहिं सृष्टि रची विधि नाम विहारो ॥ १६४ ॥
गुणसत्त्व धरे तुम रक्षत जाको ।
अब विष्णु कहैं सिगरे जग ताको ॥
तुमहीं जग रुद्र स्वरूप सँहारो ।
कहिये तिन मध्य तमोगुण भारो ॥ १६५ ॥
तुमहीं जग हो जग है तुमही में ।
तुमहीं विरची मर्य्याद दुनी में ॥
मर्य्यादहि छोंड़त जानत जाको ।
तबहीं अवतार धरो तुम ताको ॥ १६६ ॥
तुमहीं धर कच्छप वेष धरे जू ।
तुम मीन ह्वै वेदन को उधरे जू ॥

तुमहीं जग यज्ञवराह भये जू।
छिति छीनि तहँ हिरण्याक्ष हये जू ॥ १६७ ॥
तुमहीं नरसिंह को रूप सँवारो।
प्रहलाद को दीरघ दुःख बिदारो ॥
तुमहीं बलि बामन बेष छल्यो जू।
भृगुनंदन ह्वै छिति छत्र दल्यो जू ॥ १६८ ॥
तुमहीं यह रावण दुष्ट सँहारो।
धरणी महँ बूडत धर्म उबारो।
तुमहीं पुनि कृष्ण को रूप धरोगे।
हनि दुष्टन को भुव भार हरोगे ॥ १६९ ॥
तुम बौद्ध स्वरूप दयाहि धरोगे।
पुनि कल्कि ह्वै म्लेच्छ समूह हरोगे ॥
यहि भाँति अनेक स्वरूप निहारे।
अपनी मर्य्याद के कार्य्य सँवारे ॥ १७० ॥

स्वदेश प्रत्यागम

[दोहा]

बानर राक्षस ऋक्ष सब, मित्र कलत्र समेत।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथ जू, चले अवधि के हेत ॥ १७१ ॥

[चंचरी छंद]

सेतु सीतहि शोभना दरशाइ पञ्चवटी गये।
पायँलागि अगस्त्य के पुनि अत्रियौ ते विदा भये ॥

चित्रकूट विलोकि के तब ही प्रयाग विलोकियो।
भरद्वाज बसैं जहां जिनते न पावन है बियो ॥ १७२ ॥

त्रिवेणी बर्णन

[तारक छंद]

राम—बिलकै द्युति सूक्ष्म शोभति चारु।
तनु है जनु सेवत हैं सुर चारु ॥
प्रतिबिम्बत दीसि दिपै जल माहीं।
जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं ॥ १७३ ॥
जल की द्युति पीत सितासित सोहै।
चहुँपातक घात करै यक कोहै ॥
मदएण[1] मलै घसि कुंकम नीको।
नृप भारतखंड दियो जनु टीको ॥ १७४ ॥

[दंडक]

लक्ष्मण—चतुरवदन पंचवदन षटवदन,
सहस वदन हू सहसगति गाई है।
सातलोक सातद्वीप सातहू रसातलनि,
गंगाजी की शोभा सबही को सुखदाई है।
यमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रवाह पर,
केशोदास बीचबीच गिरा की गोराई है।
शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन को,
श्यामल दुकूल झीन झलकति झाई है ॥ १७५ ॥

१—मदएण=पशुमद, कस्तूरी।

सुग्रीव— [चंद्रकला]

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुंदरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की द्युति सी दरसै गति शोषै त्रिदोषन के रस की।
कहि केशव वेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल की मसकी।
सब वंदैं त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहिं केतु त्रिविक्रम के जस की ॥ १७६

विभीषण — [दंडक]

भूतल की वेणी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजति,
एक कहैं सुरपुर मारग विमान है।
एक कहैं पूरण अनादि जो अनंत कोऊ,
ताको यह केशोदास द्रवरूप गात है।
सब सुखकर सब शोभाकर मेरे जान,
कीनो यह अद्भुत सुगंध अवदात है।
दरश परश हू ते थिर चर जीवन को,
कोटि कोटि जन्म की कुगंध मिटि जात है ॥ १७७

भरद्वाज आश्रम वर्णन

[भुजंगप्रयात छंद]

भरद्वाज की वाटिका राम देखी।
महादेव कैसी बनी चित्तलेखी ॥
सबै वृक्ष मंदारहू ते भले हैं।
छहू काल के फूल फूले फले हैं ॥ १७८ ॥
कहूं हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरैं।
चुनै ओस के बुंद मुक्तानि भोरैं ॥

शुकाली कहूँ सारिकाली विराजैं।
पढ़ैं वेद मंत्रावली भेद साजैं ॥ १७६ ॥
कहूं वृत्तमूलस्थली तोय पीवैं।
महामत्त मातंग सीमा न छीवैं ॥
कहूं विप्र पूजा कहूं देव अर्चा।
कहूं योगशिक्षा कहूँ वेदचर्चा ॥ १८० ॥
कहूं साधु पौराणकी गाथ गावैं।
कहूं यज्ञ की शुभ्र शाला वनावैं ॥
कहूं होम मंत्रादि के धर्म धारैं।
कहूं वैठि कै ब्रह्मविद्या विचारैं ॥ १८१ ॥
जुवाई जहां देखिये वक्र रागी।
चलै पिप्पलै तिच्छ वुध्यै सभागी ॥
कँपैं श्रीफलै पत्र हैं पत्र नीके।
सुरामानुरागी सवै राम ही के ॥ १८२ ॥
जहां वारिदै वृन्द वाजानि साजैं।
मयूरै जहां नृत्यकारी विराजैं ॥
भरद्वाज वैठे तहां विप्र मोहैं।
मनो एकही वक्र लोकेश सोहैं ॥ १८३ ॥

लक्ष्मण— [दंडक]

केशोदास मृगजवछेरू चूषैं वाघिनीन,
चाटत सुरभि वाघ वालक वदन है।

सिंहन की सटा[1] ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहनको आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे[2] अंध तापसनि,
शिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है ॥ १८४ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]
जहाँ कोमलै वल्कलै वास सोहैं।
जिन्हैं अल्पधी कल्पशाखी विमोहैं ॥
धरे शृंखला कुञ्ज दाहैं दुरंतैं।
मनो शंभुजी संग लीने अनंतै ॥ १८५ ॥

[मालिनी छंद]
प्रशमित रज राजैं हूवे वर्षा तमी से।
विरल अटन भ्राजी स्वर्नदी कूल कैसे ॥
जगमग दरशाई सूर के अंशु ऐसे।
स्वर्ग नरक हता नाम श्रीराम कैसे ॥ १८६ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]
गहे केश पानै पियासी पठानों।
धँपै शाप के त्रास ने मान मानों ॥

१—सटा=स्कंध के बाल, २—डोरे डोरें=डोरियाये लिए हुये, शाप दिये हुए।

मनों चंद्रमा चंद्रिका चारु साजैं।
जरा सों मिले यों भरद्वाज राजैं ॥ १८७ ॥

[दोहा]

भस्मत्रिपुंडक शोभिजै, वरणत बुद्धि उदार।
मनो त्रिस्रोतासोत द्युति, वंदत लगी लिलार ॥ १८८ ॥

[भुजंगप्रयात छन्द]

मनों अंकुराली लसै सत्य की सी।
किधौं वेदविद्या प्रभाई भ्रमी सी ॥
रमै गंग की ज्योति ज्यों जह्नु नीकी।
विराजै सदा शोभ दंतावली की ॥ १८९ ॥

[गीतिका छन्द]

भ्रुकुटी विराजति श्वेत मानहुँ मंत्र अद्भुत साम के।
जिनके विलोकत ही विलात अशेष कर्मज काम के ॥
मुखवास आश प्रकाश केशव भौंर भीरन साजहीं।
जनु साम के शुभ स्वच्छ अक्षर हैं सपक्ष विराजहीं ॥१९०॥
तनु कम्बु कण्ठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिये।
अविनीत इंद्रिय निग्रहीं तिनके निबंधन आनिये ॥
उपवीत उज्ज्वल शोभिजै उर देखि यों वरणैं सबै।
सुर आपगा तपसिंधु में जस श्वेतधी दरशै अबै ॥ १९१ ॥

[दोहा]

फटिकमाल शुभ शोभिजै, उर ऋषिराज उदार।
अमल सकल श्रुतिवरणमय, मनों गिरा को हार ॥ १९२ ॥

विप्रन दीजत हीन विधानै। जानहु ताकहँ तामस दानै॥
विप्र न जानहु ये नर रूपै। जानहु ये सब विष्णु स्वरूपै २०४

[तोमर छंद]

द्विज धाम देहिं जो जाइ। बहु भाँति पूजि सुराइ॥
कछु नाहिंलै परिमान। कहिये सो उत्तम दान॥२०५॥
द्विज को जो देत बोलाइ। कहिये सो मध्यम शाइ॥
सुनि याचना मिस दानु। अति हीन ताकहँ जानु॥२०६॥

[दोहा]

प्रतिदिन दीजत नेम सों, ताकहँ नित्य बखान॥
कालहिँ पाइ जो दीजिये, सो नैमित्तिक दान॥ २०७॥

[तोटक छंद]

पहिले निजवर्तिन देहु सबै। पुनि पावहिं नागर लोग सबै॥
पुनि देहु सबै निज देशिन को। उबरो धन देहु विदेशिन को२०८॥

[दोधक छंद]

दान सकाम अकाम कहे हैं। पूरि सबै जग मांझ रहे हैं॥
इच्छित ही फल होत सकामैं। राम निमित्त ते जान अकामैं२०९॥
दान ते दक्षिण वाम बखानो। धर्म निमित्त ते दक्षिण जानो।
धर्म विरुद्ध ते वाम गुनौ जू। दान कुदान सबै से सुनौ जू२१०॥
देहु सुदान ते उत्तम लेखो। देहु कुदान तिन्है जनि देखो॥
छांडि सबै दिन दानहिं दीजै। दानहिं ते सबके मत लीजै॥२११॥

[दोहा]

केशव दान अनंत हैं, बनैं न काहू देत ॥
यहै जानि भुव भूप सब, भूमि दान ही देत ॥ २१२ ॥

[तोटक छंद]

राम—हनुमंत चली तुम जाहु तहां ।
मुनि वेष भरत्थ बसंत जहां ॥
ऋषि के हम भोजन आजु करैं ।
पुनि प्रात भरत्थहि अंक भरैं ॥ २१३ ॥

॥ इति लंका कांड ॥

उत्तर कांड

[चतुष्पदी छंद]

हनुमंत विलोके भरत अशोके अंग सकल मलधारी।
बकलत पहिरे तन शीश जटा गण हैं फल मूल अहारी॥
बहु मंत्रिगण में राज काज में सब सुख सों हित तोरे।
रघुनाथ पादुका तन मन प्रभु करि सेवत अंजुलि जोरे॥१॥

हनुमान— भरत प्रति राम संदेश

सब शोकनि छांड़ौ भूषण मांड़ौ कीजे विविधि बधायें।
सुर काज सँवारे रावण मारे रघुनन्दन घर आये॥
सुग्रीव सुयोधन सहित विभीषण सुनहुँ भरत शुभ गीता।
जय कीरति ज्यों संग अमल सकल अँग सोहत लक्ष्मण सीता॥२॥

[पद्धटिका छंद]

सुनि परम भावती भरत बात।
भये सुख समुद्र मैं मगन गात॥
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईश।
अब कहा कह्यो मोसन कपीश॥ ३॥
जैसे चकोर लीलै अँगार।
त्यहि भूलि जाति सिगरी सँभार।
जौ उठत उवत ज्यौं उदधिनंद[१]।
त्यों भरत भये सुनि रामचन्द्र॥ ४॥

१—उदधिनंद=चंद्रमा।

ज्यों सोइ रहत सब सूरहीन।
मति ह्वै अचेत यद्यपि प्रवीन॥
ज्यों उवत उठत हँसि करत भोग।
त्यों रामचन्द्र सुनि अवध लोग॥ ५॥

[मालिनी छंद]

जहँ तहँ गज गाजैं दुंदुभी दीह बाजैं।
बहु बरण पताका स्यंदनाश्वादि राजैं॥
भरत सकल सेना मध्य यों वेष कीने।
सुरपति जनु आये मेघमालानि लीने॥ ६॥
सकल नगरवासी भिन्न सेनानि साजैं।
रथ सुगज पताका झुंडझुंडानि राजैं॥
थलथल सब शोभैं शुभ्र शोभानि छाईं।
रघुपति सुनि मानों औधि सी आज आई॥ ७॥

[चामर छंद]

यत्र तत्र दास ईश व्योम ते विलोकहीं।
बानराति रीछराजि दृष्टि सृष्टि रोकहीं।
ज्यों चकोर मेघ ओघ मध्य चंद्र लेखहीं।
भानु के समान जान त्यों विमान देखहीं॥ ८॥

राम भरत मिलाप

[मदनमनोहर दंडक]

आवत विलोकि रघुबीर लघु वीर तजि
व्योम गति भूतल विमान तब आइयो।

राम पद पद्म सुख सद्म कहँ बंधु युग
दौरि तब षट्पद समान सुख पाये॥
चूमि मुख सूंघि शिर अंक रघुनाथ धरि
अश्रु जल लोचननि पेखि उर लाये।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्ध जन
हर्षि तन पुष्प बरसानि बरसाये॥ ६॥

[दोहा]

भरत चरण लक्ष्मण परे, लक्ष्मण के शत्रुघ्न।
सीता पग लागत दियो, आशिष शुभ शत्रुघ्न॥ १०॥
मिले भरत अरु शत्रुहन, सुग्रीवहिं अकुलाइ।
बहुरि विभीषण को मिले, अंगद को सुख पाइ॥ ११॥

[आभीर छंद]

जामवंत नल नील। मिले भरत शुभ शील॥
गवय गवाक्ष गयंद। कपिकुल सब सुखकंद॥ १२॥
ऋषि वशिष्ठ को देखि। जन्म सफल करि लेखि॥
राम परे उठि पाय। लक्ष्मण सहित सुभाय॥ १३॥

[दोहा]

ल सुग्रीव विभीषणहिं, करि करि विनय अनंत॥
पाँयन परे वशिष्ठ के, कपिकुल बुधि बलवंत॥ १४॥

राम— [पद्धटिका छंद]

सुनिजै वशिष्ठ कुलइष्टदेव। इन कपिनायक के सकलभेव॥
हम बूड़तहे बिपदा समुद्र। इन राखि लियो संग्राम रुद्र॥ १५॥

अवध प्रवेश

[सुंदरी छंद]

अवधपुरी कहँ राम चले जब। ठौरहिँ ठौर विराजत हैं सब॥
भरत भये शुभ सारथि शोभन। चमर धरे रविपुत्र विभीषन१६॥

[तोमर छंद]

लीनी छुरी दुहुं बीर। शत्रुघ्न लक्ष्मण धीर॥
टारैं जहां तहँ भीर। आनंदयुक्त शरीर ॥ १७ ॥

[दोधक छंद]

भूतल हू दिवि भीर विराजैं। दीह दुहूं दिशि दुन्दुभि बाजैं॥
भाट भले विरदावलि गावैं। मोद मनो प्रतिबिम्ब बढ़ावैं॥१८॥
भूतल की रज देव नशावैं। फूलन की वरषा वरषावैं॥
हीन निमेष सबै अवलोकैं। होड़ परी बहुधा दुहुँ लोकैं॥१६॥

अवध वर्णन

[तारक छंद]

सिगरे दल औधपुरी तब देखी।
अमरावति ते अति सुंदर लेखी॥
चहुं ओर विराजति दीरघ खाई।
शुभ देवतरंगिनि सी फिरि आई॥ २० ॥
अति दीरघ कंचन कोट विराजैं।
मणि लाल कँगूरन की रुचि राजैं॥

पुर सुंदर मध्य लसै छवि छायो।
परिवेष[1] मनो रवि को फिरि आयो॥२१॥

[दोहा]

विविधि पताका शोभिजैं, ऊँचे केशोदास।
दिवि देवन के शोभिजैं, मानहुँ व्यजन विलास॥२२॥

[विजय छंद]

चढ़ीं प्रतिमंदिर शोभ बढ़ीं,
तरुणी अवलोकन को रघुनन्दनु।
मनों गृहदीपनि देहधरे,
सुकिधौं गृहदेवि विमोहति हैं मनु।
किधौं कुलदेवि दिपैं अति केशव,
कै पुरदेविन को दुलरयो गनु।
जहीं सो तहीं यहि भांति लसैं,
दिवि देविन को मद घालतिहैं मनु॥२३॥

[दोहा]

अति ऊँचे मंदिरनपर, चढ़ीं सुंदरी साधु॥
दिवि देवन को करनि हैं, मनु आतिथ्य अगाधु॥२४॥

[तोटक छंद]

नरनारि भली सुरनारि सबैं। तिनकी न परै पहिचानि तबै॥
मिलि फूलन की बरषैं बरषा। अगवावनिहैं जय के करषा॥२५॥

१- परिवेष=घेरा।

[पद्मावती छंद]

रघुनंदन आये सुनि सब धाये पुर जन जैसे तैसे ॥
दर्शन रस भूले तन मन फूले वरणे जाहि न जैसे ।
पति के सँग नारी सब सुखकारी रामहिं यों दृग जोरी ॥
जहँ तहँ चहुँओरनि मिली झकोरनि चाहति चंद चकोरी ॥ २६

[पद्धटिका छंद]

बहु भांति राम प्रति द्वार द्वार ।
अति पूजत लोग सबै उदार ॥
यहि भांति गये नृपनाथ[१] गेह ।
युत सुंदरि सोदर स्यों सनेह ॥ २७ ॥

[दोहा]

मिले जाय जननीन को, जबही श्री रघुराइ ॥
करुणा रस अद्भुत भयो, मोपै कह्यो न जाइ ॥ २८ ॥
सीता सीतानाथ जू, लक्ष्मण सहित उदार ।
सबन मिले सब के किये, भोजन एकहि बार ॥ २९ ॥

[सोरठा]

पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भये ॥
हमहीं मिले अगार[२], आये प्रथम हमारेही ॥ ३० ॥

[मदनहरा छंद]

सँग सीता लक्ष्मण श्रीरघुनंदन
मातन के शुभ पाइ परे सब दुःख हरे ॥

१—नृपनाथ=राजा दशरथ । २—अगार=सब से अगाड़ी (पहले) ।

आँसुन अन्हवाये भागनि आये।
जीवन पाये अँक भरे अरु अँक धरे॥
ते बदन निहारैं सरवसु वारैं।
देहिं सबै सबहीन धनो अरु लेहिं धनो॥
तनमन न सँभारैं यहै बिचारैं।
भाग बड़ो यह है अपनो किधौं है सपनो॥ ३१॥

[स्वागता छंद]

राम प्रति होति बधाई। लोक लोक तिनकी धुनि धा[ई]
हास्य देखि कपि अद्भुत लेखैं। जाहिं यत्र तित रामहिं देखैं॥३[२]
दौरि दौरि कपि रावरे[३] आवैं। बार बार प्रति धामनि धा[वैं]
देखि देखि तिनको दै तारी। भांति भांति बिहसैं पुरनारी॥[३३]

राम सुमित्रा संवाद

[दोहा]

राम—इन सुग्रीव बिभीषण, अंगद अरु हनुमान॥
सदा भरत शत्रुघ्न सम, माता जी मैं जान॥ ३४॥

[सोरठा]

सुमित्रा—प्राणनाथ रघुनाथ, जिय की जीवनमूरि हौ॥
लक्ष्मण है तुम साथ, क्षमियहु चूक परी जो कछु॥ ३[५]

[दंडक]

राम—पौरिया कहौं कि प्रतीहार कहौं किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र किधौं मंत्री सुखदानि ये।

३—रावरे=रनवास।

सुभट कहौं कि शिष्य दास कहौं किधौं दूत,
केशोदास हाथ को हथ्यार उर आनिये।
नैन कहौं किधौं तन मन किधौं तनत्राण,
बुद्धि कहौं किधौं बल विक्रम बखानिये।
देखिवे को एक हैं अनेक भांति कीन्ही सेवा,
लखन के मात कौन कौन गुण मानिये ॥ ३६ ॥

श्रीराम कथित राज्यश्री-निंदा

अगस्त्य— [दोहा]

मारे अरि पारे हितू, कौन हेत रघुनंद ॥
निरानंद से देखियत, यद्यपि परमानंद ॥ ३७ ॥

श्रीराम— [तोमर छंद]

सुनि ज्ञान मानसहंस। जप योग जाग प्रशंस ॥
जग मांझ है दुखजाल। सुख है कहां यहि काल ॥ ३८ ॥
तहँ राज है दुख मूल। सब पाप को अनुकूल ॥
अब ताहि लैं ऋपिराय। कहि कौन नर्कहि जाय ॥३९॥

[चौपाई]

सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र[1] ॥
इनहीं[2] लगे राज के काज। इनहीं ते सब होत अकाज ॥ ४० ॥
राजभार नल भैयनि दयो। छल बल छीनि सबै तिन लयो ॥
जब लीन्हों सब राज विचारि। नलदमयंती दियोनिकारि ॥४१॥

१—मखमित्र=ऋषि २—इनहीं लगे=इन्हीं के वास्ते।

राजा सुरथ राज को नाथ । सौंपी सब मंत्रिन के हाथ।
संतत मृगया लीन विचारि । मंत्रिन राजा दियो निकारि ॥४२॥
राजश्री अति चंचल तात । ताहू की सुनि लीजै बात।
यौवन अरु अविवेकी रंग । विनस्यो कौन राजश्री संग॥४३॥
शास्त्र सुजलहू धोवत तात । मलिन होत अति ताके गात।
यद्यपि है अति उज्ज्वल दृष्टि । तदपि सृजति रागन की सृष्टि॥४४॥
महापुरुष[1] सों जाकी प्रीति । हरति सो झँझा मारुत रीति।
विषय मरीचिकानि की ज्योति । इंद्रीहरिण हारिणी होति ॥४५॥
गुरु के वचन अमल अनुकूल । सुनत होत श्रवणन को शूल।
[2] वलित नवबसन सुदेश । भिदत नहीं जल ज्यों उपदेश ॥४६॥
मित्रन हू को मतो न लेति । प्रतिशब्दक[3] ज्यों उत्तर देति।
पहिले सुनै न श्रोर सुनंति । मानो करली ज्यों न गनंति ॥४७॥

[दोहा]

धर्मवीरता विनयता, सत्यशील-आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद पुराण विचार ॥ ४८ ॥

चौपाई]

सागर में बहुकाल जो रही । सीत वक्रता शशि ते लही।
सुर तुरँग चरणनि ते तात । सीखी चँचलता की बात ॥ ४९ ॥

१—महापुरुष=ईश्वर। २—मैन=मोम, मैन वलित बसन=मोमजामा मोमकप्पड़। ३—प्रतिशब्दक=लौटकर आई हुई आवाज़ (जैसे गुंबद में आती है)।

कालकूट ते मोहन रीति। मणिगण ते अति निष्ठुर प्रीति॥
मदिरा ते मादकता लई। मंदर उदर भई भ्रममई॥ ५० ॥

[दोहा]

शेष दई बहुजिह्वता, बहुलोचनता चारु॥
अप्सरानि तें सीखियो, अपर पुरुष संचारु॥ ५१ ॥

[चौपाई]

दृढ गुन बाँधेहु बहुभाँति। को जानै केहि भाँति बिलाति॥
गज घोटक भट कोटिन अरैं। खड्ग लता पंजर ह्वै परैं॥ ५२॥
अपनाइति[1] कीन्हे बहुभाँति। को जाने कित ह्वै भजिजाति॥
धर्मकोस मंडित शुभ देश। तजति भ्रमरि ज्यों कमल नरेश ॥५३॥
यद्यपि होइ शुद्धमति सत्तु[2]। फिरै पिशाची ज्यों उनमत्तु॥
गुनवंतनि आलिंगति नहीं। अपवित्रनि ज्यों छाँड़ति तहीं ॥५४॥
शूरनि नाशति ज्यों अहि देखि। कंटक ज्यों बहु साधुन लेखि॥
सुधासोदरा यद्यपि आप। सबही ते अति कटुक प्रताप॥ ५५॥
यद्यपि पुरुषोत्तम की नारि। तदपि सकल खलजन अनुहारि॥
हितकारिन को अति द्वेषिनी। अहित लोग की अन्वेषिनी॥ ५६॥
मन मृग को सुवधिक की गीति। विषयवेलि को वारिद रीति॥
मद पिशाचिका की सी अली। मोह नींद की शय्याभली ॥५७॥
आशीविष[3] दोषन को दरी। गुण सतपुरुषन कारण छुरी॥
कल[4] हंसन की मेघावली। कपट नृत्यकारी की थली॥ ५८॥

१—अपनाइति=अपनपौ, गाढ़ा प्रेम। २—सत्तु=प्राणी, मनुष्य।
३—आशीविष=सर्प। ४—कल=चैन, आराम।

[दोहा]

बाम काम करि की किधौं, कोमल कदलि सुवेष।
धीर धर्म द्विजराज को, मनो राहु की रेष ॥ ५९ ॥

[चौपाई]

मुखरोगी ज्यों मौने रहै । बात चलाय एक है कहै ।
बंधुवर्ग पहिचाने नहीं । मानों सन्निपात है गही ॥ ६० ॥
महामंत्रहू होत न बोध । डसी कालअहि करि जनु क्रोध ।
पान बिलास उदित आतुरी । परदारा गमनै चातुरी ॥ ६१ ॥
मृगया बढ़ै शूरता बड़ी । बंदी मुखनि चायसों पढ़ी ।
जो कोहू चितवै यह दया । बात कहै तो बढ़िये मया ॥ ६२
दरशन दीबोई अतिदान । हँसि बोलै सौ बड़ सनमान ।
जो कोहू सों अपनो कहै । सपने की सी पदवी लहै ॥ ६३

[दोहा]

जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुखकर्ताई जानिये, संतत मंत्री मित्र ॥ ६४ ॥

[चौपाई]

कहौं कहां लगि ताके साज । तुम सब जानतहौ ऋषिराज
जैसी शिव मूरति मानिये । तैसी राजश्री जानिये ॥ ६५ ॥
सावधान ह्वै सेवै जाहि । सांची देत परम पद ताहि ।
जितने नृप याके बश भये । पेलि स्वर्गमग नर्कहि गये ॥ ६६ ॥

राम विरक्ति-वर्णन

[अमृतगति छंद]

सुमतिमहाऋषि सुनिये । जगमह सुक्ख न गुनिये ।
मरणहिं जीव न तजहीं । मरिमरि जन्मन भजहीं ॥ ६७ ॥
उदरनि जीवपरत है । बहु दुख सों निसरत है ॥
अंतहु पीर अनँतहीं । तन उपचार सहतहीं ॥ ६८ ॥

[दोधक छंद]

पेख भलो न कछू जिय जानै ।
लै सब वस्तुन आनन आनै ॥
शैशव ते कछु होत बड़ेई ।
खेलत हैं ते अयान चढ़ेई ॥ ६९ ॥

है पितुमातनि ते दुख भारे ।
श्रीगुरु ते अति होत दुखारे ॥
भूख न प्यास न नींद न जोवैं ।
खेलन को बहुभाँतिन रोवैं ॥ ७० ॥

जारति चित्त चिता दुचिताई ।
दोह त्वचा अहि कोप चयाई ॥
काम समुद्र झकोरनि झूल्यो ।
यौवन जोर महाप्रभु भूल्यो ॥ ७१ ॥
धूम सो नील निचोल में सोहै ।
जाइ छुई न विलोकत मोहै ॥

पावक पाप शिखा बनचारी।
जारति है नर को परनारी॥ ७२॥

पंक हियेन प्रभा सरसी सी।
कर्दम[1] काम कछु परसी सी॥
कामिनि काम की डोरि प्रसी सी।
मीन मनुष्यन को बनसी सी॥ ७३॥

[विजय छंद]

खींचत लोभ दशों दिशि को गहि
मोह महा इत पासि कै डारे।
ऊंचे ते गर्व गिरावत क्रोध सो
जीवहि लूहर[2] लावत भारे।
ऐसे मों कोढ़ की खाजु[3] ज्यों केशव
मारत काम के बाण निनारे[4]।
मारत पाँच करे पँचकूटहि[5]
कासों कहै जगजीव विचारे॥ ७४॥

भूलत है कुलधर्म सबै तबहीं
जबहीं यह आनिप्रसैजु।

१—कर्दम=पिसान वा चारा जो बंसी में लगाया जाता है। २—लूहर=लूगर, लुआठ। ३—कोढ़ की खाजु=दुःख को और अधिक बढ़ानेवाली वस्तु। ४—निनारे=न्यारेही। ५—पँचकूट=पांच जनों का गुट वा समूह।

केशव वेद पुराणन कोन सुनै
समुझै न त्रसै न हँसै जू॥
देवनि ते नरदेवनि ते नर ते
वर वानर ज्यों बिलसै जू।
यँत्र न मँत्र न मूरि गनै जग
यौवन काम पिशाच वसैजू॥ ७५॥

ज्ञाननि के तनत्राननि को कहि
फूल के बाणनि वेधत को तो।
वाइ लगाइ विवेकन को वह
साधक को कहि बाधक हो तो।
और को केशव लूटतो जन्म
अनेकन के तपसान को पोतो[1]।
तौ मम लोक सबै जग जातो जो
काम बड़ो बटपार[2] न होतो॥ ७६॥

[मकरंद विजया छंद]

कँपै वर बानी डगै उर डीठि
तुचाति कुचै[3] सकुचै मति बेली।
नवै नव ग्रीव थकै गति केशव
बालक ते सँगही सँग खेली॥

१—पोतो= (पोत) जहाज। २—बटपार=राहजन, डाकू, लुटेरा।
३—कुचै=सिकुड़ती है।

लिये सब आधिन व्याधिन संग
जरा जब आवै ज्वरा[1] की सहेली।
भगै सब देह दशा जिय साथ
रहै दुरि दौरि दुराशा अकेली ॥ ७७ ॥
विलोकि शिरोरुह श्वेत समेत
तनोरुह केशव यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु के औधि के अंकुर
शूल कि शुष्क समूल नशायो ॥
अरै किधौं केशव व्याधिन की किधौं
आधि के आखर अंत न पायो।
जरा शरपंजर जीव जरैउ कि
जरा जरकंबर[2] सों पहिरायो ॥ ७८ ॥

[मनोहर विजया छंद]

दिनहीं दिन बाढत जाइ हिये
जरि जाइ समूल सो औषधि पैहै।
किधौं याहिके साथ अनाथ ज्यों केशव
आवत जात सदा दुख सैहै ॥
जग जाकी तू ज्योति जगी जड़ जीव
रे कैसेहु ता पहँ ज्ञान न पैहै।
शुनि बालदशा गई ज्वानी गई
जरि जैहै जराऊ दुराशा न जैहै ॥ ७९ ॥

१—ज्वरा=मृत्यु। २—जरकंबर=जरी का दुशाला

[दोहा]

जहां भामिनी भोग तहँ, विन भामिनि कहँ भोग ।
भामिनि छूटे जग छुटै, जग छूटे सुखयोग ॥ ८० ॥
जोई जोई जो करै, अहँकार के साथ ।
स्नान दान तप होम जप, निष्फल जानौ नाथ ॥ ८१ ॥

[तोटकछंद]

जिय मांझ अहंपद, जो दमिये ।
जिनहीं जिनहीं गुण श्रीरमिये ॥
तिनहीं तिनहीं लखि लोभ डसै ।
पट तंतुनि उंदुर[1] ज्यों तरसै[2] ॥ ८२ ॥

[विजयछंद]

दान सयाननि के कलपद्रुम
टूटत ज्यों ऋण ईश के मांगे ।
सूखत सागर से सुख केशव ज्यों
दुख श्रीहरि के अनुरागे ॥
पुण्य विलात पहारन से पल ज्यों
अघ राघव की[3] निशि जागे ।
ज्यों द्विजदोष ते सँतति नाशति
त्यों गुण भाजत लोभ के आगे ॥ ८३ ॥

१—उंदुर=चूहा, मूसा । २—तरासता है=काटता है । ३—राघव की निशि=रामनवमी की रात्रि ।

दान दया शुभशील सखा विभुकैं गुरा मिलुक को विकुलावैं।
साधु सुधी सुरभी सब केशव भाजि गई भ्रम भूरि मजावैं॥
सज्जन संग पछेरु डरैं बिडरैं धूपमादि प्रवेश न पावैं।
बार[1] बड़े अवयाव बँधे उरमंदिर बाल गोविन्द न आवैं॥८४॥

[दोहा]

आंखिन आछत आंधरो, जीव करै बहुभांति॥
धीरन धीरज बिन करै, तृष्णा कृष्णा राति॥८५॥
तृष्णा कृष्णा षट्पदी, हृदय कमल मों बास॥
मत्त धंनि गलगंडयुग, नर्क अनर्क विलास॥८६॥

[विजय छंद]

कौन गनै यहि लोक तरीन[2] विलोकि विलोकि जहाजन बोरै।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरै॥
वंचकता अपमान अयान अलाभ[3] भुजंग भयानक कृष्णा॥
पाटु बड़ो कहुँ बाटु न केशव क्यों तरिजाइ तरंगिनि तृष्णा॥८७॥
पैरत पापपयोनिधि में मन मूढ़ मनोज जहाज चढ़ोई।
पेलन ऊन तजै जड़ जीव अऊ बड़वानल क्रोध डढ़ोई[4]॥
मूढ़ तरंगिनि में उरझैं सु हवै पर लोभ प्रवाह बढ़ोई।
बूड़त है तेहि ते उबरै कहि केशव काहे न पाठ पढ़ोई॥८८॥

१—बार=द्वार। २—तारी=नाव। ३—पाटु=चौड़ाई (नदी को)
४—डढ़ोई=जला हुआ है।

[दोहा]

जो कँहू सुखभावना, काहू को जग होति।
काल आखु[१] पटतंतु ज्यों, तबहीं काटत ज्योति ॥८९॥
ब्रह्म विष्णु शिव आदि दै, जेतने दृश्य शरीर।
नाशहेतु धावत सबै, ज्यों बड़वानल नीर ॥ ९० ॥

[सुंदरी छंद]

दोषमयी जो दवारि लगी अति।
देखतही त्यहि ते जो जरी मति ॥
भोग की आश न गूढ़ उजागर।
ज्यों रज सागर मैं मुनि नागर ॥ ९१ ॥

[विजया छंद]

माछी कहै अपनो घर माछरु[२] मूसो कहै अपनो घर पैसो।
कोने घुसी कहै घूसि घिरौरी[३] बिलारि औ व्याल बिले महँ वैसो ॥
कीटक श्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहैं भ्रमजाल है जैसो।
हौंहूं कहौं अपनो घर तैस्यहि ता घर सों अपनो घर कैसो ॥९२॥

[सुंदरी छंद]

जैसहि हौं अब तैसहि हौं जग।
आपद सम्पद के न चलौं मग ॥
एकहि देह तियाग बिना मुनि।
हौं न कछू अभिलाष करौं मुनि ॥ ९३ ॥

१—आखु=चूहा। २—माछरु=मच्छड़। ३—घिरौरी=घरों के कोनों पर मट्टी का घर बनाने वाली एक प्रकार का भृंगी वा छिपकली, बिस्तुइया।

जो कछु जीवउधारण को मत।
जानत हो तौ कहो तनु है रत॥
यों कहि मौन गही जगनायक।
केशवदास मनो वच कायक॥ ६४॥

वशिष्ट कथित मुक्तिमार्ग

[पद्धटिका छंद]

वशिष्ठ—तुम आदि मध्य अवसान एक।
अरु जीव जन्म समुझो अनेक॥
तुमहीं जो रची रचना विचारि।
त्यहि कौन भांति समुझौं मुरारि॥ ६५॥
सब जानि बूझियत मोहिं राम।
सुनिये सो हौं जग ब्रह्म नाम॥
तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जाल।
त्यइ जीव जानि जग में कृपाल॥ ६६॥

[निशिपालिका छंद]

लोभ मद मोह वश काम जबहीं भयो।
भूलि गयें रूप निज बांधि तिनसो गयो॥
राम—बूझियत बात यह कौन विधि उद्धरै।
वशिष्ठ-वेद विधि शोधि बुध यत्न बहुधा करें॥ ६७॥

[दोहा]

राम—जित लैजैहै बासना, तित तित हैहै सीन।
यत्न कहो कैसे करै, जीव बापुरो दीन॥ ६८॥

[दोधक छंद]

वशिष्ठ—जीवन की युग भांति दुराशा।
होति शुभाशुभ रूप प्रकाशा॥
यतन सों शुभपन्थ लगावै।
तौ अपनो तबहीं पद पावै॥ ९९॥
हौं मन ते विधि पुत्र उपायो।
जीव उधारण मंत्र बतायो॥
है परिपूरण ज्योति तिहारी।
जाइ कही न सुनी न निहारी॥ १००॥

[दोहा]

ताकी इच्छा ते भये, नारायण मतिनिष्ठ।
तिनते चतुरानन भये, तिनते जगत प्रतिष्ठ॥ १०१॥

[दोधक छंद]

जीव सबै अवलोकि दुखारे।
आपन चित्त प्रयोग बिचारे॥
मोहिं सुनाये तुम्हें ते सुनाऊं।
जीव उधारण गीति सु गाऊं॥ १०२॥

[दोहा]

मुक्तिपुरी दरबार के, चारि चतुर प्रतिहार[1]।
साधुन को सतसंग सम,[2] अरु संतोष विचार॥१०३॥

१—प्रतिहार=दरबान। २—सम=समता।

यह जग चक्राव्यूह किय, कज्जल कलित अगाधु ।
तामहँ पैठि जो नीकसै, अकलंकित सो साधु ॥ १०४ ॥

[दोधक छंद]

देखतहूं एक काल छियेहूं ।
बात कहै सुनै भोग कियेहूं ॥
सोवत जागत नेक न लोभै ।
सो समता सबही महँ शोभै ॥ १०५ ॥
जो अभिलाष न काहु की आवै ।
आये गये सुख दुःख न पावै ॥
लै परमानँद सों मनलावै ।
सो सब माँझ सँतोष कहावै ॥ १०६ ॥
आयो कहाँ अब हौं कहि को हौं ।
ज्यों अपनो पद पाऊं सो टोहौं ॥
बंधु अबंधु हिये महँ जानैं ।
ता कहँ लोग विचार बखानैं ॥ १०७ ॥
चारि में एकहु जो अपनावै ।
तौ तुम पै प्रभु आवन पावै ॥
राम—ज्योति निरीह निरंजन मानौ ।
तामहँ क्यों अपि इच्छ बखानौ ॥ १०८ ॥

[दोहा]

वशिष्ठ—सफल शक्ति अनुमानिये, अद्भुत ज्योति प्रकाश ।
जाते जग को होत है, उत्पति थिति अरुनाश ॥ १०९ ॥

[दोधक छंद]

श्रीराम-जीव बँधे सब आपनि माया।
कीन्हें कुकर्म मनो वच काया॥
जीवन चित्त प्रबोधन आनो॥
जीवनमुक्त के भेद बखानो॥ ११०॥

वशिष्ठ—बाहेरहूं अति शुद्ध हियेहूं।
जाहि न लागत कर्म कियेहूं॥
बाहेर मूढ सो अंत सयानो।
ताकहँ जीवनमुक्त बखानो॥ १११॥

[दोहा]

आपुन सो अवलोकिये, सबही युक्तायुक्त।
अहं भाव मिटिजाहि जो, कौन बद्ध को मुक्त॥ ११२॥

[दोधक छंद]

श्रीराम—सो सिगरे गुण होत सो जानो।
स्थावर जीवनमुक्त बखानो॥
वशिष्ट—जानि सबै गुण दोषन छंडै।
जीवनमुक्तन के पद मंडै॥ ११३॥

[दोहा]

राम—साधु कहावत करत हैं, जग में सब व्यौहार।
तिनको मीचु न ह्वै सकै, कहि प्रभु कौन विचार॥११४॥

[पद्धटिका छंद]

वशिष्ठ—जग जिनको भज तव चरण लीन।
तन तिनको मृत्यु न करति छीन॥
तेहि स्वरहीं छय दुख छीण होत।
जिय करत अमित आनँद उदोत॥ ११५॥
जो चाहै जीवन अति अनंत।
सो साधै प्राणायाम यंत्र॥
शुभ रेचक पूरक नाम जानि।
अरु कुम्मकादि सुखदानि मानि॥ ११६॥
जो क्रमक्रम साधै साधु धीर।
सो तुमहिं मिलै याही शरीर॥
राम—जग तुमते नहिं सर्वज्ञ आन।
अब कहौ देव पूजा विधान॥ ११७॥

[तारक छंद]

वशिष्ठ—हम एक समय निकसे तपसा को।
तब जाइ भजे हिमवंतरसा[1] को॥
बहु भांति करयो तप क्यों कहि आवै।
शितकण्ठ प्रसन्न भये जग गावै॥ ११८॥

[दंडक छंद]

ऊजरे उदार उर वासुकी विराजमान,
हारके समान आन उपमा न टोहिये।

१—हिमवंतरसा=हिमालय भूमि।

शोभिजै जटान बीच गंगाजू के जल बुंद,
कुंद कीसी कली केशोदास मन मोहिये ॥
नख कीसी रेखा चद्र चन्दन सी चारुरज,
अंजन शृंगार हू गरल रुचि रोहिये।
सब सुखसिद्धि शिवा सोहै शिवजू के साथ,
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहिये ॥ ११६ ॥

[तारक छंद]

महादेव—वरमाँगि कछु ऋषिराज सयाने।
बहुभांति चले तपपंथ पयाने ॥
वशिष्ठ—पुजवो परमेश्वर मो मन इच्छा।
सिखवो प्रभु देवप्रपूजन शिक्षा ॥ १२० ॥

[दोहा]

शिव—रामरमापति देव नहिं, रंग न रूप न भेव।
देव कहत ऋषि कौन को, सिखऊं जाकी सेव ॥ १२१॥

[तोमर छंद]

वशिष्ठ-हम कहा जानहिं अज्ञ। तुम सर्वदा सर्वज्ञ ॥
अब देव देहु बताइ। पूजा कहौ समुझाइ ॥ १२२ ॥
शिव-सतचित्प्रकाश प्रभेव। तेहि वेद मानत देव ॥
तेहि पूजि ऋषि रुचिमंडि। सब प्राकृतन को छंडि ॥१२३
पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज धरिये ध्यानु ॥
यों पूजि घटिका एक। मनु कियो याज अनेक ॥ १२४ ॥

जिय जान यहई योग। सब धर्म कर्म प्रयोग॥
सब रूप पूजि प्रकाश। तब भये हमसे दास॥
यह बचन करि परमान। प्रभु भये अंतर्द्धान॥ १२५॥

[दोहा]

यह पूजा अद्भुत 'अगिनि,' सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ।
सबै शुभाशुभ वासना, मैं आरी निज हाथ॥ १२६॥

[भूलना छंद]

यहि भांति पूजा पूजि जीव जो भक्त परम कहाइ।
भव भक्तिरस भागीरथी महँ देहि दुखनि बहाइ॥
पुनि महाकर्ता महात्यागी महाभोगी होइ।
अति शुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहै सब कोइ॥ १२७॥

[दोहा]

राग द्वेष बिन कैसहूं, धर्माधर्म जो होइ॥
हर्ष शोक उपजै न मन, कर्त्ता महा सोलोइ॥ १२८॥
भोज्य अभोज्य न रत विरत, नीरस सरस समान।
भोग होइ अभिलाष बिन, महाभोगता मान॥१२९॥
जो कछु आंखिन देखिये, वाणी बरणी जाहि॥
महातियागी जानिये, झूठो जानै ताहि॥ १३०॥

[तोमर छंद]

जिय ज्ञान बहु व्यौहार। अरु योग भोग विचार॥
यहि भांति होइ जो राम। मिलिहैं सो तेरे धाम॥ १३१॥

[सवैया]

निशिवासर वस्तुविचार करै मुख सांच हिये करुणा धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्मकथ परिग्रह साधन को गनु है।
कहि केशव योग जगै हिय भीतर बाहेर भोगन सो तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके तिनको बनहीं घरहै घर ही बनु है॥१३२॥

[दोहा]

लेइ जो कहिये साधु अन-लीन्हे कहिये बाम॥
सबको साधन एक जग, राम तिहारो नाम॥ १३३॥

राम—मोहिं न हुतो जनाइये, सबही जान्यौ आजु॥
अब जो कहौ सो करि बनै, कहे तुम्हारे काज॥ १३४॥

रामनाम महिमा

वशिष्ठ- [स्वागता छंद]

चित्त मांझ जब आनि अरूझी। बात तात कहँ मैं यह बूझी॥
योगयाग करि जाहि न आवै। स्नान दान विधि मर्म न पावै।
है अशक्त सब भांति विचारो। कौन भांति प्रभु ताहि उधारो१३५

[भुजंगप्रयात छंद]

ब्रह्मा—जहीं सच्चिदानन्द रूपै धरैंगे॥
सु त्रैलोक्य को ताप तीन्यों हरैंगे।
कहैंगो सबै नाम श्रीराम ताको।
सदा सिद्ध है शुद्ध उच्चार जाको॥ १३६॥
कहै नाम आधो सो आधो नशावै।
कहै नाम पूरो सो वैकुंठ पावै॥

सुधारैं दुहूँ लोक को धर्म दोऊ।
हिये छद्म छांड़े कहै धर्म कोऊ॥ १३७॥
सुनावै सुनै साधु संगी कहावैं।
कहावै कहै पाप पुंजै नशावै॥
स्मरावै स्मरै यासना आरि डारै।
तजै छद्म को देवलोकै सिधारै॥ १३८॥

[तामरस छंद]

जब सब वेद पुराण नशैहैं। जप तप तीरथहू मिटिजैहैं॥
द्विज सुरभी नहिं कोउ विचारै। तब जग केवल नाम उधारै १३६

[दोहा]

मरणकाल काशी विषे, महादेव निजधाम॥
जीवन को उपदेशिहैं, रामचन्द्र को नाम॥ १४०॥
मरणकाल कोऊ कहै, पापी होइ पुनीत॥
सुखही हरिपुर जाइहै, सब जग गावैं गीत॥ १४१॥
रामनाम के तत्त्व को, जानत वेद प्रभाव॥
गंगाधर कै धरणिधर, वालमीकि मुनिराय॥ १४२॥

रामतिलकोत्सव

[दोधक छंद]

सातहु सिंधुन के जल रूरे। तीरथजालनि के पय पूरे॥
कंचन के घट वानर लीने। आइ गये हरि आनंदभीने॥१४३॥

[दोहा]

सकल रत्नमय मृत्तिका, शुभ औषधी अशेष ॥
सातद्वीप के पुष्प फल, पल्लव रस सविशेष ॥ १४४ ॥

[दोधक छंद]

आंगन हीरन को मनमोहै । कुंकुम चन्दन चर्चित सोहै ॥
है सरसी सम शोभप्रकाशी । लोचन मीन मनोज विलासी ॥१४५॥

[दोहा]

गजमोतिनयुत शोभिजैं, मरकतमणि के थार ॥
उदक बुन्द सों जनु लसत, पुरइनिपत्र अपार ॥ १४६ ॥

[विशेषक छंद]

भांतिन भांतिन भाजन राजत कौन गनै ।
ठौरहिं ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै ॥
भूपन के प्रतिविम्ब विलोकत रूप रसे ।
खेलत हैं जल मांझ मनो जलदेव बसे ॥ १४७ ॥

[पद्धटिका छंद]

मृगमद मिलि कुंकुम सुरभिनीर ।
घनसार सहित अम्बर उसीर ।
घसि केशरि सों बहु विविध नीर ।
छिति छिरके चर थावर शरीर ॥ १४८ ॥
बहु वर्ण फूल फल दल उदार ।
तहँ भरि राखे भाजन अपार ॥
तहँ पुष्प वृक्ष शोभैं अनेक ।

मणिवृन्द स्वर्णकेवृन्त पर्क[1] ॥ १४६ ॥
त्यहिं उपर रच्यो एकै वितान ।
दिवि देखत देवन के विमान ।
दुहुँलोक होत पूजा विधान ।
अरु नृत्य गीत वादित्र गान ॥ १५० ॥
तरु ऊमरि[2] को आसन अनूप ।
बहु रचित हेममय विश्वरूप ॥
तहँ बैठे आपुन आइ राम ।
सियसहित मनो रतिरुचिरकाम ॥ १५१ ॥
जनु धनदामिनि आनन्द देत ।
तरुकल्प कल्पवल्ली समेत ।
है कैधों विद्या सहित ज्ञान ।
कै तपसंयुत मन सिद्धि जान ॥ १५२ ॥
कै विक्रम युत कीरति प्रवीन ।
कै श्रीनारायण शोभलीन ॥
कै अति शोभित स्वाहा सनाथ ।
कै सुन्दरता शृंगार साथ ॥ १५३ ॥

[सुंदरी छंद]

केशव शोभन छत्र विराजत ।
जा कहँ देखि सुधाधर लाजत ॥

१—एक=अपूर्व । २—ऊमरि=गूलरि ।

शोभित मोतिन के मति के गन।
लोकन के जनु लागि रहे मन ॥ १५४ ॥

[दोहा]

शीतलता शुभता सबै, सुंदरता के साथ ॥
अपनी रवि को अंशु लै, सेवत जनु निशिनाथ ॥ १५५ ॥

[सुंदरी छंद]

ताहि लिये रविपुत्र सदा रत ।
चमर विभीषण अंगद ढारत ।
कीरति लै जग की जनु वारत ।
चन्द्रक[1] चंदन चंद सदारत[2] ॥ १५६ ॥
लक्ष्मण दर्पण को देखरावत ।
पाननि लक्ष्मण बंधु खवावत ॥
अर्थ लै लै नरदेव सदारत ।
देव अदेवनि पायन पारत ॥ १५७ ॥

[दोहा]

जामवंत हनुमंत नल, नील मरातिब[3] साथ ॥
छरी छबीली शोभिजै, दिगपालन के हाथ ॥ १५८ ॥
रूप वहिक्रम सुरभि सम, वचन रचन बहु भेव ॥
सभा मध्य पहिचानिये, नर नरदेव न देव ॥ १५९ ॥

१—चंद्रक = कपूर । २—सदारत = सदा + आर्त = नित्य दुखी ।
१—मरातिब=माहीमरातिब शाहंशाही झंडा ।

आई जय अभिषेक की, घटिका केशवदास ॥
बाजे एकहिबार बहु, दुंदुभि दीह अकाश ॥ १६० ॥

[भूलना छंद]

तब लोकनाथ विलोकि कै रघुनाथ को निज हाथ।
सविशेष सों अभिषेक की पुनि उच्चरी शुभगाथ ॥
ऋषिराज इष्ट वशिष्ठ सों मिलि गाधिनन्दन आइ।
पुनि बालमीकि वियास आदि जिते हुते मुनिराइ ॥१६१॥
रघुनाथ शंभु स्वयंभु[१] को निज भक्ति दी सुखपाइ।
सुरलोक को सुरराज को किय दीह निर्भय राइ।
विधि सों ऋषीशन सों विनय करि पूजियौ परि पाइ।
बहुधा दई तपवृद्ध की सब सिद्धि सिद्ध सुभाइ ॥ १६२ ॥

[दोहा]

दीन्हों मुकुट विभीषणै, अपनो अपने हाथ ॥
कंठमाल सुग्रीव को, दीन्ही श्रीरघुनाथ ॥ १६३ ॥

[चंचरी छंद]

माल श्रीरघुनाथ के उर शुभ्र सीतहि सो दई।
अर्पियो हनुमन्त को तिन दृष्टि कै करुणामई ॥
और देव अदेव वानर याचकादिक पाइयो।
एक अङ्गद छोड़ि कै ज्यह आसु के मन भाइयो ॥ १६४ ॥
अंगद-देव हो नरदेव वानर नैऋतादिक वीर हैं।
भरत लक्ष्मण आदि दै रघुवंश के सब वीर हैं ॥

१—स्वयंभु=ब्रह्मा।

आजु मोसन युद्ध माड़हु एकएक अनेक के।
बाप कों तब हौं तिलोदक दीह देहु विवेक के॥ १६५॥

[दोहा]

राम—कोऊ मेरे वंश में, करिहै तोसों युद्ध॥
तब तेरो मन होइगो, अंगद मोसों शुद्ध॥ १६६॥

देवस्तुति

[झूलना छंद]

ब्रह्मा—तुम हौ अनन्त अनादि सर्बग सर्वदा सर्वज्ञ।
अब एकहौ कि अनेक हौ महिमा न जानत अज्ञ॥
भ्रमियो करें जग लोक चोदह लोभ मोह समुद्र।
रचना रची तुम ताहि जानत हौं न ब्रह्म न रुद्र॥ १६७॥

[दंडक छंद]

शिव-अमल चरित तुम बैरिन मलिन करौ,
साधु कहैं साधु परदारप्रिय अति हौ।
एक थल स्थित पै बसत जगजन प्रिय,
केशोदास द्विपद पै बहुपद गति हौ॥
भूपण सकल युत शीश धरें भूमिभार,
भूतल फिरत पै अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मणन राज सिंह साथ चिर,
रामचन्द्र राज करौ अद्भुत गति हौ॥ १६८॥

इन्द्र-बैरी गाइ ब्राह्मण को ग्रन्थन में सुनियतु,
कविकुलही के सुबरण हर काज हैं।

गुरुशय्यागामी एक बालकै विलोकियतु,
मातंगनहीं के मतवारे कैसो साज है ॥
अरिनगरीन प्रति होत है अगम्यागौन,
दुर्गनहि केशोदास दुर्गति सी आज है।
वेयताई देखियतु गढ़नि गढ़ोई जीयो,
चिरु चिरु रामचन्द्र जाको ऐसो राजहै ॥ १६६ ॥

पितर-बैठे एक छत्र तर छाँह सब छिति पर,
सूरकुलकलश सु राहु हित मति हैा।
त्यक वामलोचन कहत सब केशोदास,
विद्यमान लोचन है देखियतु अति हैा ॥
मकर कहावत धनुष धरे देखियतु,
परम कृपालु पै कृपाणकरपति हैा।
चिरु चिरु राज करो राजा रामचंद्र सब,
लोक कहैं नरदेव देवदेवगति हैा ॥ १७० ॥

मन्त्रि-चित्रही में आज वर्णसंकर विलोकियतु,
ब्याह ही में भारिन के गारिन सों काज है।
ध्वजै कंपयोगी निशि चकै है वियोगी,
द्विजराज मित्र द्वेषी एक जलद समाज है।
मेघै तो गगन पर गांजत नगर घरि,
अपयश डर यशही को लोभ आज है।
दुःखी ही को खंडन है मंडन सकल जग,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है ॥ १७१ ॥

वायु-राजा रामचंद्र तुम राजहु सुयश जाको
भूतल के आस पास सागर को पास सो।
सागर में बड़ भाग वेष शेषनाग जू को
जपै सुखदानि सोई विष्णु को निवास सो॥
विष्णुजू में भूरिभाव भाव को प्रभाव जैसो
भवजू के भाल में विभूति को विलास सो।
भूति माहिं चंद्रमा सो चंद्र में सुधा कोअंशु,
अंशुनि में केशोदास चंद्रिका प्रकाश सो ॥ १७२ ॥

देवगण-राजा रामचंद्र तुम राज करो सब काल
दीरघ दुसह दुख दीनन को दारिये।
केशोदास मित्रदोष मंत्रदोष ब्रह्मदोष
देवदोष राजदोष देश ते निकारिये॥
कलह कृतघ्न महिमंडल के बरिवंड
पाखँड अखंड खंड खंड करि डारिये।
वंचक कठोर ठेलि कीजै बारापार आठ,
भूठ पाठकंठ पाठकारी काठ मारिये[1]॥ १७३ ॥

ऋषिगण-भोगभार भागभार केशव विभूतिभार
भूमिभार भूरि अभिषेकन के जल से।
दानभार गानभार सकल सयानभार
धनभार धर्मभार अक्षत अमल से॥

१—काठ मारना=काठ में पग डालकर कैद कर देना।

जयभार यशभार राजभार राजत है
रामशिर आशिष अशेष अंशबल से।
देश देश यत्र-तत्र देखि देखि तेहि दुख
फाटत हैं दुष्टन के शीश दाड़िमफल[1] से ॥ १७४ ॥

केशव-

[विजय छंद]

आइ नहीं करतूति कही सब श्री सविता कविता करि हारे।
याही ते केशवदास अशेष पढ़ैं अपनो करि नेकु निहारे।
कीरति देवनि की दुलही अरु दूलह श्रीरघुनाथ विहारे।
सातौं रसातल सातहु लोकन सातहु सागर पार विहारे ॥१७५॥

[चमलाला छंद]

किन्नर, यक्ष, गन्धर्व-

अजर अमर अनन्त जय जय चरित श्रीरघुनाथ।
करत सुर नर सिद्ध अचरज श्रवण सुनि सुनि गाथ ॥
काय मन वच नेम जानत शिला सम पर नारि।
शिला ते पुनि परम सुन्दरि करत नेकु निहारि ॥ १७६ ॥
चमर ढारत मातु ऊपर पाणि पीड़ा होइ।
बिसदंड[2] ज्यों कोदंड हर को टूक कीन्हों दोइ ॥
साधु होइ असाधु राजत द्विजन ही को मान।
सकल मुनि गण मुकुटमणि को मद्यो अभिमान ॥ १७७ ॥
सूर सुन्दर सरस रवि रति करत रति कहँ लालि।
एक पत्नीव्रत निबाहत मदन को मद घालि ॥

१—दाड़िमफल=दाड़िम फल, अनार। २—बिसदंड=कमल की जड़।

सुखद सुहृद सपूत सोदर हनत नृप जा काज।
पलक में सोइ राज छांड्यो मातु पितु की लाज ॥१७८॥
मंथरा सों मोद मानत विपिन पठयो पेलि।
सूर्पनखा की नाक काटी करत आई केलि॥
चंचु चापत अंगुरी शुक पैंचि लेत डेराइ।
बन्धु सहित कबन्ध के उर मध्य पैठे धाइ ॥१७६॥
सर्वथा सर्वज्ञ सर्वग सर्वदा रस एक।
अज्ञ ज्यों सीता बिलोकी व्यग्र भ्रमत अनेक॥
बाण चूकत लक्ष्य को को गनै केतिक बार।
ताल सातों बेधियो शर एक एकहि बार ॥१८०॥
सापराध असाधु अति सुग्रीव कीन्हों मित्र।
अपराध विन अति साधु बालिहि हन्यो जानि अमित्र॥
चलत जब चौगान को लै चलत दल चतुरंग।
देवशत्रुहि चले जीतन ऋक्ष बानर संग॥१८१॥
भूलिहू जा तन निहारत गुरु सो गिरिन समान।
निगरु देखो भये गिरिगण जलधि में ज्यों पान॥
यतन यतननि तरत सरयू डरत लोलत डीठि।
गये सागर पार दे पगु प्रगट पाहन पीठि ॥१८२॥
बाजि गज रथ बाहिनी चढ़ि चलत अमित सुभाय।
लंक में बिन पानहीं निज गये अपने पाय।
यज्ञ को फल गहत यत्ननि यज्ञपुरुष कहाय।
बेर जूंठे दियो सेवरी भक्ष्यो सुख पाय ॥ १८३ ॥

कुसुम कन्दुक लगत काँपत मूँदि लोचन मूल।
शत्रु सन्मुख सहे हँसि हँसि शैल असि शर शूल॥
दूरि करत न दया दर्शन देह दंशन दंश।
भई धार न करत रावण वंश को निर्वंश॥ १८४॥
दास येमहि[1] आन को लगि नाम अपनो लेत।
काल सो रिपु आपु हति जयपत्र औरहिं देत॥
पुण्यकालन देत विप्रन तौलि तौलि कनक।
शत्रु सोदर को दई सब स्वर्ण ही को लंक॥ १८५॥
होइ मुक्त सो जाहि इनको मरत आवै नाम।
मुक्त एक न भये बानर मरे करि संग्राम॥
एक पल बिन पान खाये बार बार जम्हात।
वर्ष चौदह नींद भूख पियास छोड़ी गात॥ १८६॥
क्षमैं बहु अपराध अपने कोटि कोटि कराल।
अपराध एक न क्षम्यो गो द्विज दीन को सब काल॥
यद्यपि लक्ष्मण करी सेवा सर्व भाँति समेत।
तदपि मानत सर्वथा करि भरत ही की सेव॥ १८७॥
कहत इनको सर्व साँचे सकल राना राय।
तनक सेवा दास की कहँ कोटिगुणित बनाय॥
डरत एक अपलोक[2] ते ये जीव चौदह लोक।
ठौर जाकहँ कहुँ न ताकहँ देत अपनो ओक[3]॥ १८८॥

१—येमा=निराशा। २—अपलोक=बदनामी, कलंक।
३—ओक=स्थान, घर।

छाँड़ि ऋषि द्विज देवऋषि ऋषिराज सब सुखपाइ।
प्रगट सकल सनौढियन के प्रथम पूजे पाइ॥
छोड़ि पितर त्रिशंकु है विपरीत यद्यपि देह।
अवध केशव जात शूकर श्वान स्वर्ग सदेह॥ १८६॥
एक पल उर मांझ आये हरत सब संसार।
आयकै संसार में इन हरेउ भूतल भार॥
शेष शम्भु स्वयम्भु आपत निगम नेतिन जासु।
ताहि लघुमति वरणि कैसे सकत केशवदास॥ १९०॥

[दोहा]

यहि विधि चौदह भुवन के, गावत मुनि यश गाथ।
प्रेम सहित पहिराइ सब, विदा किये रघुनाथ॥१९१॥

[झूलना छंद]

अभिषेक की यह गाथ श्रीरघुनाथ की नर कोइ।
पल एक गावत पाइहै बहु पुत्र सम्पति सोइ॥
जरि जाहिगी सब वासना भव विष्णु भक्त कहाइ।
यमराज के शिर पाउँ दै सुरलोक लोकनि जाइ॥ १९२॥

[रामराज्य वर्णन)

[भुजंगप्रयात छंद]

अनन्ता[१] सबै सर्वदा शस्ययुक्ता।
समुद्रावधिः सप्त ईती विमुक्ता॥

१—अनंता=पृथ्वी।

सदा वृक्ष फूले फले तत्र सोहैं।
जिन्हें अल्पधी कल्प साखी विमोहैं ॥ १६३॥
सवै निम्नगा[१] क्षीर के पूर पूरी।
भई कामगो सी सबै धेनु रूरी ॥
सबै बाजि स्वर्वाजि ते तेज पूरे।
सबै दन्ति स्वर्दन्ति ते दर्प रूरे ॥ १६४ ॥
सबै जीव हैं सर्वदानन्द पूरे।
धर्मी संयमी विक्रमी साधु शूरे ॥
युवा सर्वदा सर्व विद्या विलासी।
सदा सर्व सम्पत्ति शोभा प्रकाशी ॥ १६५ ॥
चिरंजीव संयोग योगी अरोगी।
सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी ॥
सबै शील सौंदर्य सौगन्ध धारी।
सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी ॥ १६६ ॥
सबै न्हान दानादि कर्माधिकारी।
सबै चिच चातुर्य्य चिंताप्रहारी ॥
सबै पुत्र पौत्रादि के सुक्ख साजैं।
सबै भक्त माता पिता के विराजैं ॥ १६७ ॥
सबै सुन्दरी सुन्दरी साधु सोहैं।
शची सी सती सी जिन्हें देखि मोहैं ॥

१—निम्नगा=नदी ।

सबै प्रेम की पुण्य की सद्मिनी[१] सी।
सबै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मिनी सी॥ १९८॥
भ्रमै संभ्रमी यत्र शोकै सशोकी।
अधर्म्मैं अधर्मी अलोकै[२] अलोकी[२]॥
दुखै तौ दुखी ताप तापाधिकारी।
दरिद्रै दरिद्री विकारै बिकारी॥ १९९॥

[चौपाई]

होम धूम मलिनाई जहां। अति चंचल चल दल है तहां॥
बाल नाश है चूड़ाकर्म्म। तीक्षणता आयुध के धर्म्म॥ २००॥
लेत जनेऊ भिक्षा दानु। कुटिल चाल सरितानि बखानु॥
व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै। कोकिलकुल पुत्रन परिहरै॥२०१॥
फागुहि निलज लोग देखिये। जुवा देवारी को लेखिये॥
नित उठि बेझोई मारिये। खेलत में केहूँ हारि ऐ॥ २०

[दंडक]

भावै जहां विभिचारी वैद्य रमैं परनारी,
द्विजगन दंडधारी चोरी परपीर की।
मानिनीन हीं के मन मानियत मान भंग,
सिंधुहि उलंघि जाति कीरति शरीर की॥
मूलै तौ अधोगतिन पावत हैं केशोदास,
मीचु ही सो है वियोग इच्छा गंगानीर की।

१—सद्मिनी=हवेली, घर। २—अलोक=अपलोक, बदनामी, अयश।

बंध्या बासनानि जानु विधवा सुबाटिकाई,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥ २०३ ॥

[दोहा]

कविकुल ही के श्रीफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है, रामचंद्र के राज ॥२०४॥

[दंडक]

लूटिबे के नाते पाप पट्टने तौ लूटियतु
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु है।
घालिबे के नाते गर्व घालियतु देवन के
जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है ॥
बांधिबे के नाते ताल बांधियतु केशोदास
मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥ २०५ ॥

[चंद्रकला छंद]

सब के कल्पद्रुम के बन हैं सब के घर बारन गाजत हैं।
सब के घर शोभति देवसभा सब के जय दुंदुभि बाजत हैं ॥
निधि सिद्धि विशेष अशेषनि सों सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि केशव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ।२०६

[दंडक]

जूझहि में कलह कलहप्रिय नारदै,
कुरूप है कुबेरै लोम सब के चयन को।

पापन की हानि डर गुरुन को बैरी काम,
आगि सर्वभक्षी दुखदायक अयन को।
विद्या ही में वादु बहुनायक है वारिनीधि,
जारज है हनुमंत मीत उदयन को।
आंखिन अछत अंध नारिकेर कृश कटि,
ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को॥ २०७

[दोहा]

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुःख अदेय।
द्विस्वभाव अश्लेष में, ग्राहस जाति अजेय॥२०८॥

[तोमर छंद]

बहु शब्द वंचक जानि। अलि पश्यतोहर[1] मानि॥
नर छांहई अपवित्र। शर खंग निर्दय मित्र॥२०९॥

[सोरठा]

गुण तजि औगुणजाल, गहत नित्यप्रति चालनी॥
पुंश्चली ति[2] तेहिकाल, एकै कीरति जानिये॥ २१०॥

[दोहा]

धनद लोक सुरलोकमय, सप्तलोक के साज।
सप्तद्वीपवति महि वसी, रामचंद्र के राज॥ २११॥
दशसहस्र दशसै बरस, रसा बसी यहि साज॥
स्वर्ग नर्क के मग थके, रामचन्द्र के राज॥ २१२॥

१—पश्यतोहर=देखते देखते चोराने वाला। २—ति=तिय स्त्री।

चौगान वर्णन

[चौपाई]

यहि विधि गये राम चौगान। सावकाश[1] सब भूमि समान॥
शोभन एक कोश परिमान। रचो रुचिर तापर चौगान॥२१३॥
एक कोद[2] रघुनाथ उदार। भरत दूसरे कोद विचार॥
सोहत हाथे लीन्हें छुरी। फारो पौरी राती हरी॥२१४॥
देखन लग्यो सबै जग आल। डारिदियो भुव गोला हाल[3]॥
गोला जाइ जहाँ जहँ अवै। होत तहीं तितहीं तित सबै॥२१५॥
मनो रसिक लोचन रुचि रचे। रूप संग बहु नाचनि नचे॥
लोक लाज छांडे अंग अंग। डोलत जनु जन मन के सँग॥२१६॥
तब ते इत इन ते उत होई। मेकउ ठौर न पावै सोई॥
काम क्रोध मद मढ़्यो अपार। मानो जीव भ्रमै सँसार॥ २१७॥
जहां तहां मारै सब कोइ। ज्यौं नर पंच विरोधी होइ॥
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन[4] बाहन तबै॥२१८॥

[दोहा]

जब जब जीतैं हाल हरि, तब तब बजत निशान॥
हय गय भूषण भूरि पट, दीजत लोगनि दान॥ २१९॥

[चौपाई]

तब तेहि समय एक बेताल। पढ़्यो गीत गुनि बुद्धि विशाल॥
गोलन की बिनती सुखपाई। रामचन्द्र सों कीन्ही आई॥२२०॥

१—सावकाश=खूब लंबा चौड़ा। २—कोद=तरफ, ओर। ३—हाल=टेढ़ा मारो पाली। ४—बासन=वस्त्र।

[दंडक छंद]

पूरव की पुरी पूरी पापर पुरी से तन,
वापुरी वै दूरिही ते पायन परति हैं।
दक्षिण की पक्षिनी सी गच्छैं अंतरिक्ष मग,
पक्षिम की पक्षहीन पक्षी ज्यों उरति हैं।
उत्तर की देतो हैं उतारि शरणागतनि,
धातन उतायली उतार उतरति हैं।
गोलन की मूरतिन दीजिये जू अभैदान,
रामवैर कहां जाईं विनती करति हैं॥ २२१॥

चंद्रोदय वर्णन

[दोहा]

प्राचीदिशि ताही समय, प्रगट भयो निशिनाथ।
वर्णत ताहि विलोकि कै, सीता सीतानाथ॥ २२२॥

[हरिणी छंद]

फूलन की शुभ गेंद नई। सूंघि सची जनु डारि दई।
दर्पण सो शशि श्रीरति को। आसन काम महीपति को॥२२३॥
मोतिन को श्रुति भूषण मनो। भूलि गई रवि की तिय मनो।
अंगद को पितु सो सुनिये। सोहत तारहिं संग लिये।
भूप मनो भव छत्र धरेउ। लोक वियोगिन को विडरेउ॥२२४॥
देवनदी जल राम कह्यो। मानहुँ फूलि सरोज रह्यो।
फेन किधौं नभसिंधु लसै। देवनदी जल हंस बसै॥ २२५॥

[दोहा]

चारु चंद्रिका सिंधु में, शीतल स्वच्छ सतेज।
मनो शेषमय शोभिजै, हरिराधिप्ठित सेज ॥ २२६ ॥

[दंडक छंद]

केशोदास हैं उदास कमलाकर सों कर,
शोषक प्रदोष ताप तमोगुण तारिये।
अमृत अशेष के विशेष भाव बरषत,
कोकनद मोद चण्ड खण्डन विचारिये।
परमपुरुषपदविमुख परुष रुख,
सुमुख सुखद विदुषन उर धारिये।
हरि हैं री हिये में न हरिख हरिणनैनी,
चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये ॥ २२७ ॥

बाग वर्णन

[सुंदरी छंद]

रामसों रामप्रिया कह्यो यों हँसि।
बाग देखावहु लोकनकेशवि ॥
राम विलोकत बाग अनन्तहि।
ज्यों अवलोकत कामद सन्तहि ॥ २२८ ॥
बोलत मोर जहाँ सुख संयुत।
ज्यों विरदावलि मागध के सुत ॥

कोमल कोकिल के कुल बोलत।
ज्ञानकपाट कुची[1] जनु खोलत॥ २२६॥
फूल तजै बहु वृच्छन को गनु।
छोड़त आनँद आँसुन को जनु॥
दाड़िम की कलिका मन मोहति।
हेम कुपी जनु चन्दन सोहति॥ २३०॥

[दोधक छंद]

वेल के फूल लसैं अतिफूले।
भौंर भवैं तिनके रस भूले॥
यों करवीर करी[2] वन राजै।
मन्मथ वाणन की गति साजै॥ २३१॥
केतकपुंज प्रफुल्लित सोहैं।
भौंर उड़ैं तिनमें अति मोहैं॥
श्रीरघुनाथहिं आवत भागे।
जे अपलोक हुते अनुरागे॥ २३२॥

[दोहा]

श्याम शोण द्युति फूल की, फूले बहुत पलास।
जरै कामकैला मनो, मधुऋतु वात विलास॥ २३३॥

[तोटक छंद]

बहु पंकज की कलिका हुलसी।
तिनमें अलि श्यामल ज्योति लसी॥

१—कुची=कुंजी, ताली, चाभी। २—करी=कली।

उपमा शुक सारिक चित्तधरी।
जनु हेमकुपी रस सोंध भरी॥ २३४॥

[तारक छंद]

उधरे उर दाड़िम दीह विचारे।
सुदर्शन के शोभन दन्त निहारे॥
अति मंजुल मंजुल कुंज विराजैं।
बहु गुंजनिकेतन[1] पुंजनि साजैं॥
नर अन्ध भये दरशे तब भौरे।
तिनके जनु लोचन हैं बकठौरे॥ २३५॥
थल शीतल तप्त स्वभावनि साजैं।
शशि सूरज के जनु लोक विराजैं॥
जलयंत्र विराजत भाँति भली है।
धर ते जलधार अकाश चली है॥
यमुना जल सूक्ष्म वेष सँवारेउ।
जनु चाहत है रविलोक विहारेउ॥ २३६॥

[चंचरी छंद]

त्ति भाँति कहाँ कहाँ लगि वाटिका बहुधा भली।
ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु है गिरायन की थली॥
नीलकंठ नचैं घने जनु जानिये गिरिजा धनी।
शोभिजै बहुधा सुगन्ध मनों मलैयन की घनी[2] ॥२३७॥

१–गुंज निकेतन=भौंरा। २–घनी=धनी

[चौपाई]

करुणामय बहु कामनि फली। जनु कमला की वासस्थली ॥
शोभे रम्भा शोभासनी। मनो शची की आनँदवनी ॥ २३८ ॥

[कमल छंद]

तरु चन्दन उज्वलता तन धरे।
लपटी नव नागलता मन हरे ॥
नृप देखि दिगम्बर वन्दन करे ॥
चित चन्द्रकलाधर रूपनि भरे ॥ २३९ ॥

अति उज्वलता सब कालहु बसै।
शुक केकि पिकादिक कंठहु लसै ॥
रजनीदिन आनँदकंदनि रहै।
मुखचन्दन की जनु चंदनि अहै ॥ २४० ॥

[तोटक छंद]

सब जीवन को बहु सुक्ख जहां।
बिरही जनहीं कहँ दुःख तहाँ ॥
जहँ आगम पौनहिं को सुनिये।
नित हानि असौंधहि को गुनिये ॥ २४१ ॥

[दोहा]

तप ही को ताड़न जहां, तृप चातक के चित्त।
पात फूल फल दलनि को, भ्रम भ्रमरनि के मित्त ॥२

[तारक छंद]

तिनमें यक कृत्रिम पर्वत राजै।
मृग पक्षिन की सब शोभहि साजै॥
बहु भाँति सुगंध मलयगिरि मानों।
कलधौत स्वरूप सुमेरु बखानों॥ २४३॥
अति शीतल शंकर को गिरि जैसो।
शुभ श्वेत लसै उदयाचल ऐसो॥
घृतिसागर में मैनाकु मनो है।
अजलोक[1] मनों अजलोक[2] बनो है॥ २४४॥

[तोटक छंद]

सरिता तिनतें शुभ तीनि चली।
सिगरी सरितान की शोभ दली॥
इक चंदन के जल उज्ज्वल है।
जग जहुसुता शुभशील गहै॥ २४५॥

[चौपाई]

सुरराज को मारग छवि छायो। जनु दिवि ते भूतल पर आयो।
जनु धरणी में लसति विशाल। मुदित जुही की वन वनमाल

[दोहा]

तज्यो न भावै एक पल, केशव सुखद समीप।
जासों सोहत तिलक सो, दीन्हें जंबूद्वीप॥ २४७॥

१—अजलोक=अयोध्या। २—अजलोक=ब्रह्मलोक।

[दोधक छंद]

परगन के मदकै जनु दूजी।
है यमुनाद्युति कै जनु पूंजी॥
धार मनो रसराज विशाला।
पंकजजालमई जनु माला ॥ २४८ ॥

[दोहा]

दुखखंडन तरवारि सी, किधौं शृंखला चारु।
क्रीड़ागिरि[१] मातंग की, यहै कहै संसारु ॥ २४९ ॥
क्रीडागिरि ते अलिन की, अवली चली प्रकाश ॥
किधौं प्रतापानलन की, पदवी[२] केशवदास ॥ २५० ॥

[दोधक छंद]

और नदी जल कुंकुम सोहै। शुद्ध गिरा मन मानहुँ मोहै ॥
कंचन के उपवीतहि साजै। ब्राह्मण सो यह खंड विराजै ॥२५१॥

[स्वागता छंद]

लौंगफूलमय सेवटि[३] लेखी। एलबीजयहु बालक देखी।
केरफूलदल नावन माहीं। श्रीसुगन्ध तहँ है बहुधाहीं ॥२५२॥

[दोहा]

खेवत मत्त मलाह अलि, को वरणै वह ज्योति ॥
तीन्यो सरिता मिलित जहँ, तहाँ त्रिवेणी होति ॥२५३॥

१—क्रीड़ागिरि=बनावटी पर्वत। २—पदवी=मार्ग। ३—सेवटि=सेउटा, नदी की मिट्टी का कीचड़।

तड़ाग वर्णन

[दोहा]

सीता श्रीरघुनाथजू, देखी थमित शरीर।
शुभ अवलोकन छोड़ि कै, गये जलाशय तीर ॥२५४॥

[चौपाई]

आई कमलवासु सुखदेन। सुखयासन आगे हुँ लेन ॥
देख्यो जाइ जलाशय चारु। शीतल सुखद सुगन्ध अपारु ॥२५५

[मरहट्टा छंद]

वनश्री को दर्पण चन्द्रातप[1] जनु किधौं शरद आवास।
मुनिजन गण मन सों विरही जन सों विशवलयनि विलास ॥
प्रतिबिम्बित थिरचर जीव मनोहर मनु हरिउदर अनन्त।
बन्धनयुत सोहै त्रिभुवन मोहै मानों बलि यशवन्त ॥ २५६॥

[चौपाई]

विषमय पै सब सुख को धाम। शम्बररूप बढ़ावै काम ॥
कमलनमध्य भ्रमर सुखदेत। सन्तहृदय जनु हरिहि समेत २५७
बीचबीचसोहैं जलजात। तिनते अलिकुल उड़िउड़ि जात ॥
सन्तहियन सों मानहुँ भाजि। चञ्चल चली अशुभ की राजि २५८

सीता त्याग

[सुंदरी छंद]

एक समय रघुनाथ महामति।
सीतहिं देख सगर्भ बढ़ी रति ॥

१—चंद्रातप=चादनी।

सुन्दरि माँगु जो जीमहँ भावत।
मो मन तो निरखे सुख पावत ॥ २५६ ॥
सीता—जो तुम होत प्रसन्न महामति।
मेरे बढ़ै तुमहीं सों सदा रति॥
अंतर की सब बात निरंतर।
जानत हौ सब की सबते पर ॥ २६० ॥

[दोहा]

राम—निर्गुण ते मैं सगुण भो, सुनु सुंदरि तव हेत।
और कछु मांगो सुमुखि, रुचै जो तुम्हरे चेत[१] ॥ २६१ ॥

[सुंदरी छंद]

सीता-जो सबते हित मोकहँ कीजत।
ईश दया करिकै वरु दीजत॥
हैं जितने ऋषि देवनदी तट।
हैं तिनको पहिराय फिरौं पट ॥ २६२ ॥

[दोहा]

राम—प्रथम दोहदै[२] क्यो करौं, निष्फल सुनि यह बात।
पट पहिरावन ऋषिन को, जैयो सुन्दरि प्रात ॥ २६३ ॥

[सुंदरी छंद]

भोजन कै तब श्रीरघुनंदन।
पौढ़ि रहे बहु दुष्टनिकंदन॥

१—चेत=चित्त। २—दोहद=गर्भ (गर्भवती)।

बाजे बजे अवरात भई जय।
दूतन आइ प्रणाम करी तब ॥ २६४ ॥

[चंचला छंद]

भूत भावना[1] कही कही न जाय बैन।
कोटिधा विचारियो परै कछू विचार मैं न ॥
सूर के उदोत होत बंधु आइयो सुजान।
रामचंद्र देखियो प्रभात चंद्र के समान ॥ २६५ ॥

[संयुता छंद]

बहुभाँति वंदनता करी। हँसि बोलियो न दयाधरी ॥
हमते कछू द्विजदोष है। जेहिते कियो प्रभु रोषहै ॥ २६६ ॥

[दोहा]

मनसा वाचा कर्मणा, हम सेवक सुनु तात।
कौन दोष नहिं बोलियतु, ज्यों कहि आये पात ॥ २६७ ॥

[संयुता छंद]

राम–कहिये कहा न कही परै। कहिये तौ ज्यों बहुते टरै ॥
तब दूत बात सबै कही। बहुभाँति देह दशा दही ॥ २६८ ॥

[दोहा]

भरत–सदा शुद्ध अति आनको, निन्दत त्यों खलजाल।
जैसे श्रुतिहि सुभाय ही, पाखंडी सब काल ॥ २६९ ॥
भव अपवादनि ते तज्यो, त्यों चाहत सीताहि।
ज्यों जगके संयोग ते, योगीजन समताहि ॥ २७० ॥

१—भूत भावना=बिती बीत के विचार।

[झूलना छंद]

मनमानि कै अति शुद्ध सीतहिं आनियो निज धाम।
अवलोकि पावक अंक ज्यों रविअंक पंकजदाम॥
क्यहिं भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद वादि बखानि।
शिव ब्रह्म धर्म समेत श्रोपितु साखि बोल्योहु आनि॥२७१॥

यमनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़िहैं कपिलाहि।
विरहीन को दुख देत क्यों हर डारि चंद्रकलाहि॥
यह है असत्य जो होइगो अपवाद सत्य सुनाथ।
प्रभु छाँडि शुद्ध सुधा न पीवहु आपने विष हाथ॥ २७२॥

[दोहा]

प्रिय पावनि प्रियवादिनी, पतिव्रता अति शुद्ध।
जग को गुरु अरु गुर्व्विणी[१] छाँडत वेदविरुद्ध॥ २७३॥

वे माता वैसे पिता, तुमसों भैया पाइ।
भरत भये अपवाद को, भाजन भूतल आइ॥ २७४॥

[हरिलीला छंद]

राम-सांची कही भरत बात सबै सुजान।
सीता सदा परम शुद्ध कृपानिधान॥
मेरी कछू अबहिं इच्छ यहै सो हेरि।
मोको हती बहुरि बात कही जो फेरि॥ २७५॥

१—गुर्व्विणी=गर्भवती।

[दोधक छंद]

लक्ष्मण—दूषत सैन सदा शुभ गंगा।
छोड़हुगे वह तुंग तरंगा॥
मायहि निन्दत हैं सब योगी।
क्यों तजिहैं अब भूपति भोगी॥ २३६॥
ग्यारसि[1] निन्दत हैं मठधारी।
भावति हैं हरिभक्तनि भारी॥
निन्दत हैं तब नामनि वामी[2]।
का कहिये तुम अन्तर्यामी॥ २३७॥

[दोहा]

तुलसी को मानत प्रिया, गौतमतिय अति अब।
सीता को छोड़न कहैं, कैसे कै सर्वज्ञ॥ २३८॥

[रूपमाला छंद]

शत्रुघ्न—स्वल्प नहिं छोड़िये तिय युधिष्ठिरी पद दोर।
छांड़ियो तब शुद्ध सीतहि गर्भमोचन होर॥
पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ।
लोक लोकन में अलोक न लीजिये रघुराइ॥ २३९॥

[दोहा]

रामचन्द्र जगचन्द्र तुम, फल दल फूल समेत॥
सीता या वन पद्मिनी, न्याव नहीं दुख देत॥ २४०॥

१—ग्यारसि=एकादशी। २—वामी=वाममार्गी।

घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज ॥
अपनेहि घर कत करत हो, शोक अशोकसमाज ॥२८१॥

[तोटक छंद]

राम-तुम बालक हौ बहुधा सबमैं।
प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमैं॥
जो कहैं हम बात सो जाइ करौ।
मन मध्य न और विचार धरौ ॥ २८२ ॥

[दोहा]

और होइ तौ जानिजै,[१] प्रभु सों कहा बसाइ॥
यह विचारिकै शत्रुहा, भरत उठे अकुलाइ ॥ २८३ ॥

[दोधक छंद]

राम-सीतहि लै अब सत्वर[२] जैये।
राखि महावन में पुनि ऐये॥
लक्ष्मण जो फिरि उत्तर दैहौ॥
शासन भंग को पातक पैहौ॥ २८३ ॥
लक्ष्मण लै वन सीतहिं धाये।
स्थावर जंगम हू दुख पाये॥
गंगहिं देखि कह्यो यह सीता।
श्रीरघुनायक को जनु गीता॥२८४ ॥

१—जानिजै=समझ लेते, लड़कर होश ठिकाने कर देते। २—सत्वर=शीघ्र।

पार भये अबहीं जन दोऊ।
भीम बनी जन जन्तु न कोऊ।
निर्जल निर्जन कानन देख्यो।
भूत पिशाचन को घर लेख्यो॥ २८५॥

[नगस्वरूपिणी छंद]

सीता-सुनों न झानकारिका। शुकौ पढ़ैं न सारिका॥
न होमधूम देखिये। सुगन्ध बन्धु लेखिये॥२८६॥
सुनों न वेद की गिरा। न बुद्धि होति है थिरा॥
ऋषीन की कुटी कहाँ। पतिव्रता बसैं जहाँ॥२८७॥
मिलै न कोउ एकहूं। न आवते न जातहूं॥
चले हमैं कहाँ लिये। डेरात हैं महा हिये॥२८८॥

[दोहा]

सुनि सुनि लच्मण भीत अति, सीताजू के बैन॥
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भरि आये नैन॥ २८९॥

[नाराच छंद]

विलोकि लक्ष्मणै भई विदेहजा विदेह सी।
गिरी अचेत ह्वै मनो घनै घनै तड़ीत सी॥
करी जो छाँह एक हाथ एक पात[1] पास[2] सों।
सिच्यो शरीर वीर नैननीर हीं प्रकाश सों॥ २९०॥

१—पात=दर्ग। २—पास=पत्र।

[रूपमाला छंद]

राम की जपसिद्धि सी सिय को चले बन छांड़ि।
छांह एक फनी करौं फन दीह मालनि मांड़ि॥
बालमीकि विलोकियो वन देवता जनु जानि।
कल्पवृक्षलता किधौं दिवि ते गिरी भुव आनिं॥ २६१॥
सींचि मंत्र सजीव जीवन जी उठी तेहि काल।
पूंछियो मुनि कौन की दुहिता वहू अरु बाल॥
सीता-हौं सुता मिथिलेश की दशरत्थपुत्रकलत्र।
कौन दोष तजी न जानति कौन आपुन अत्र॥२६२॥
मुनि-पुत्रिके।सुनि मोहिं जानहि बालमीकि द्विजाति।
सर्वथा मिथिलेश को गुरु सर्वदा शुभ भाँति॥
होहिंगे सुत द्वै सुधी पगुधारिये मम ओक।
रामचन्द्र क्षितीश के सुत जानिहै तिहुँलोक॥ २६३॥
सर्वथा गुणि शुद्ध सीतहिं लैगये मुनिराइ।
आपनी तपसान की शुभ सिद्धि सी सुख पाइ॥
पुत्र द्वै भये एक श्रीकुश दूसरो लव जानि।
जातकर्महि आदि दै किय वेद भेद बखानि॥ २६४॥

[दोहा]

वेद पढ़ायो प्रथमही, धनुर्वेद सविशेष।
अस्त्र शस्त्र दीन्हे घने, दीन्हे मंत्र अशेष॥ २६५॥

कुत्ते की नालिश

[दोधक छंद]

एक समय हरि धर्मसभा में।
बैठे हुते नरदेव प्रभा में॥
संग सबै ऋषिराज बिराजैं।
सोदर मंत्रिन मित्रन साजैं॥ २६६॥
कूकर एक फिरादिहि[1] आयो।
दुंदुभी धर्मदुवार बजायो॥
बाजतही उठि लछमण धाये।
श्वानहि कारण बूझन आये॥ २६७॥
कुकुर—काहुके क्रोध विरोध न देख्यो।
राम को राज तपोमय लेख्यो॥
तामहँ मैं दुख दीरघ पायो।
रामहिं हौं सो निवेदन आयो॥ २६८॥
लछमण-धर्मसभा महँ रामहिं जानो।
श्वान चलो निज पीर बखानो॥
श्वान—हौं अब राजसभा महिं आऊं।
आऊं तो केशव शोभ न पाऊं॥ २६६॥

[दोहा]

देव अदेव नृदेव घर, पावन थल सुख दाइ।
बिन बोले आनंदमति, कुत्सित जीव न जाइ॥ ३००॥

१—फिरादिहि=फर्याद, नालिश।

[दोधक छंद]

राजसभा महँ श्वान बोलायो। रामहिं देखतही शिरनायो।
राम कह्यो जो कछु दुख तेरे। श्वान निशंक कहो पुर[1] मेरे॥३०१

[तारक छंद]

श्वान—तुम हो सर्वज्ञ सदा सुखदाई।
अरु हो सबको समरूप सदाई॥
जग सोवत है जगतीपति जागे।
अपने अपने सब मारग लागे॥ ३०२॥
नरदेवन पाप पर परजा को।
निशि वासर होइ न रक्षक ताको॥
गुण दोषन को जब होइ न दर्शी।
तबहीं नृप होइ निरयपद पर्शी॥ ३०३॥

[दोहा]

निज स्वारथही सिद्धि द्विज, मोकों कर्यो प्रहार॥
बिन अपराध अगाधमति, ताको कहा विचार॥ ३०४॥

[तारक छंद]

तब ताकहँ लेन तहीं जन धाये।
तबहीं नगरी महँ ते गहि ल्याये॥
राम—यह कूकर क्यों बिन दोषहिं मार्यो।
अपने जिय त्रास कछू न विचार्यो॥ ३०५॥

१—पुर=सामने।

[दोहा]

ब्राह्मण—यह सोवत हो पंथ में, हौं भोजन को जात ॥
मैं अकुलाइ अगाधमति, याको कीन्हों घात ॥ ३०६ ॥

[स्वागता छंद]

राम—ब्रह्म ब्रह्म मुनिराज बखानो ।
धर्म कर्म बहुधा तुम जानो ॥
कौन दंड द्विज को द्विज दीजै ।
विप्रचेति कहिये सोइ कीजै ॥ ३०७ ॥

कश्यप—
है अदण्ड्य भुवदेव सदाई । यत्र तत्र सुनिये रघुराई ।
ईश शीश अब याकहँ दीजै । चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥३०८

[तोमर छंद]

राम–सुनि श्वान कहि तू दंड । हम देहिं याहि अखंड ॥
कहि बात तू डर डारि । जिय मध्य आपु विचारि ॥३०९॥

[दोहा]

श्वान–मेरो मायो करहु जौ, रामचन्द्र हितमंडि ।
कीजै द्विज यहि मठपती, और दंड सब छंडि ॥ ३१० ॥

[निशिपालिका छंद]

पीत पहिराइ पट बाँधि शिर सों पटी ।
पोरि अनुराग अरु जोरि बहुधा गटी[1] ॥

१—गटी=समूह ।

पूजि परि पायँ मठु ताहि तयहीं दयौ ।
मत्त गजराज चढ़ि विप्र मठ को गयो ॥ ३११ ॥

[दोहा]

भयो रंक ते राज द्विज, श्वान कीन करतार ।
भोगन लाग्यो भोगवै, दुंदुभि बाजत द्वार ॥ ३१२ ॥

[सुंदरी छंद]

बूझत लोग सभा महँ श्वानहिं ।
जानत नाहिन या परिमानहिं ॥
विप्रहि तैं जो दई पदवी वह ।
है यह निग्रह कैधौं अनुग्रह ॥ ३१३ ॥

श्वान कथित मठपति निंदा

श्वान— [दोधक छंद]

एक कनोज हुतो मठधारी । देव चतुर्भुज को अधिकारी ॥
मन्दिर कोउ बड़ो जब आवै । अंग भली रचनानि बनावै ३१४॥
जादिन केशव कोउ न आवै । तादिन पलिका ते न उठावै ॥
भेटनि लै बहुधा धन कीनो । नित्य करै बहुभोग नवीनो ॥३१५
एक दिना यक पाहुन आयो । भोजन सो बहुभांति बनायो ॥
ताहि परोसन को पितु मेरो । बोलि लियो हित हो सब केरो३१६॥
ताहि तहां बहु भांति परोसो । केहू कहूं नख माहँ रह्यो खो ॥
ताहि परोसि जहीं घर आयो । रोवत हौं हँसि कण्ठ लगायो३१७

[चामर छंद]

मोहिं मध्य तते दूधभात भोज्य मो दियो।
यात सों सिराइ तात छीर अंगुली छियो॥
च्यो द्रयो मप्यों गयो अनेक नर्कवान में।
हौं भ्रम्यो अनेक योनि औध थानि श्वान मो॥३१८॥

[दोहा]

याको थोरो दोष मैं, दीन्हों दण्ड अगाध॥
राम चराचर ईश तुम, क्षमियो यह अपराध॥ ३१९॥
लोक करेउ अपवित्र यहि, लोक नरक को वास॥
हुवै जो कोऊ मठपतिहि, ताको पुण्य विनास॥ ३२०॥
औरौ एक कथा कहौ, विकल भूप की राम॥
यहौ अयोध्या वसत है, वंशकार[1] के धाम॥ ३२१॥

[वसंततिलका छंद]

राजा हुतो प्रबल दुष्ट अनेकहारी।
वाराणसी विमल क्षेत्र निवासकारी॥
सो सत्यकेतु यह नाम प्रसिद्ध शूरो।
विद्याविनोदरत धर्म्मविधान पूरो॥ ३२२॥
धर्माधिकार पै एक द्विजाति कीन्हौं।
संकल्पद्रव्य बहुधा त्यहिं चोरि लीन्हौं॥

१—वंशकार=बसोर, डोम।

बंदी विनोद गणिकादि विलासकर्त्ता ।
पावैं दशांश द्विज दान अशेष हर्त्ता ॥ ३२३ ॥
राजा विदेश कछु साजि चमू गये हो ।
जूझेउ तहाँ समर योधन सों भयो हो ॥
आये कराल किलदूत कलेशकारी ।
लीन्हे गये नृपति को जहँ दण्डधारी ॥ ३२४ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

धर्म्मराज—कहा भोगवै गो महाराज दू मैं ।
कि पापै कि पुण्यै करेउं भूरि भू मैं ॥
राजा—सुनौ देव मोकों कछू सुद्धि नाहीं ।
कहौ आपही पाप जो मोहिं माहीं ॥ ३२५ ॥
धर्मराज—कियो तैं द्विजाती जो धर्माधिकारी ।
सुतो नित्य सङ्कल्पवित्तापहारी ॥
दियो दुष्ट रण्डानि मुण्डानि लै लै ।
महापाप माथे तिहारे सो दै दै ॥ ३२६ ॥
हुतो तैं सबै देश ही को नियन्ता ।
भले की बुरे की करी तैं न चिन्ता ॥
महा सूक्ष्म है धर्म्म की बात देखो ।
जितो दान दीन्हों तितो पाप लेखो ॥ ३२७ ॥

[दोहा]

कालसर्प से समुझिये, सबै राज के कर्म्म ॥
ताहू ते अति कठिन है, नृपति दान के धर्म्म ॥ ३२८ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

भयो कोटिधा नर्क संपर्क ताको ॥
हुते दोष संसर्ग के शुद्ध जाको ॥
सबै पाप ते छीण भो मुक्त लेखो।
रह्यो ओघ में आनि है कोलदेखो ॥ ३२९ ॥

लवणासुरवध

[भुजंगप्रयात छंद]

विदा ह्वै चले रामपै शत्रुहंता।
चले साथ हाथी रथी युद्धरंता ॥
चतुर्दा चमू चारिहू ओर गाजैं।
बजैं दुन्दुभी दीह दिग्देव लाजैं ॥ ३३० ॥

[दोहा]

केशव वासर बारहें, रघुपति केशव धीर।
लवणासुर के यमनि ज्यों, मेले यमुना तीर ॥ ३३१ ॥

[मनोरमा छंद]

लवणासुर आइगयो यमुनातट।
अवलोकि हँस्यो रघुनन्दन के भट ॥
धनुबाण लिये निकसे रघुनन्दन।
मद के गज को सुत केहरि को जनु ॥ ३३२ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

लवणासुर—सुन्यो तैं नहीं जो इहाँ भूलि आयो।
बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष पायो ॥

शत्रुघ्न— महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों।
तजै देश को कै सजै युद्ध मोसों ॥ ३३३ ॥
लवणासुर-चहै राम राजा दशग्रीवहंता ।
सो तो वन्धु मेरो सुरस्त्रीन रंता ॥
हतौं तोहि वाको करौं चित्त भायो ।
महादेव की सों वड़ो भक्त पायो ॥ ३३४ ॥
भये क्रुद्ध दोऊ दुवो युद्धरंता ।
दुवो अस्त्र शस्त्र प्रयोगी निहंता ॥
वली विक्रमी धीर शोभा प्रकाशी ।
नश्यो हर्ष दोऊ सवर्पे विनाशी ॥ ३३५ ॥

[दोहा]

शत्रुघ्न-लवणासुर शिवशूल विन, और न लागै मोहिं ।
शूल लिये विन भूलिहू, हौं न मारिहौं तोहिं ॥ ३३६ ॥

[मोटनक छंद]

लीन्हो लवणासुर शूल जहीं। मारेउ रघुनन्दन वाण तहीं ॥
काट्यो शिर शूल समेत गयो। शूली कर सुःख त्रिलोक भयो ३३७
वाजे दिवि दुन्दुभि दीह तवै। आये सुर इंद्र समेत सवै।
देव—
कीन्हो वहु विक्रम या रण में। माँगौ वरदान रुचै मन में ॥३३८॥

[प्रमाणिका छंद]

शत्रुघ्न—सनाढ्यवृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै।
अकालमृत्यु सो मरै। अनेक नर्क मों परै ॥ ३३९ ॥

सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा।
भजैं सजैं जे संपदा। विरुद्ध ते असंपदा ॥ ३४० ॥

[दोहा]

मथुरामंडल मधुपुरी, केशव स्वयश बसाइ ॥
देखे तब शत्रुघ्न, रामचंद्र के पाँइ ॥ ३४१ ॥

रामाश्वमेध

विश्वामित्र वसिष्ठ सों, एक समय रघुनाथ ॥
आरंभो केशव करन, अश्वमेध को गाथ ॥ ३४२ ॥

[चामर छंद]

राम-मैथिली समेति तौ अनेक दान मैं दियो ॥
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो ॥
सीय त्याग पाप ते हिये सो हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥ ३४३ ॥

[दोहा]

कश्यप-धर्म कर्म कछु कीजइ, सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजइ, निष्फल सोई नाथ ॥ ३४४ ॥

[तोटक छंद]

करिये शुतभूषण रूपरयी ।
मिथिलेशसुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये।
शुचि सों सब यज्ञ विधान किये ॥ ३४५ ॥

हयशालन ते हय छोरि लियो ॥
शशिवर्ण सो केशव शोभ रयो ॥
श्रुति श्यामल एक विराजतु है ॥
अलि ज्यों सरसीरुह लाजतु है ॥ ३४६ ॥

[रूपमाला छंद]

पूजि रोचन स्वच्छ अक्षत पट्ट बांधिय भाल ॥
भूपि भूषण शत्रुदूषण छोड़ियो तेहि काल ॥
संग लै चतुरंग सैनहि शत्रुहंता साथ ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सो श्रीरघुनाथ ॥ ३४७ ॥
जात है जित वाजि केशव जात हैं तित लोग ।
बोलि विप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग ॥
वेणु वीण मृदंग बाजत दुंदुभी बहु भेव ।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव ॥ ३४८ ॥

सेनावर्णन

[कमल छंद]

राघव की चतुरंग चमू चय को गनै केशव राज समाजनि ॥
सूरतुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पट साजनि ।
टूटि परैं तिनते मुकुता धरणी उपमा वरणी कविराजनि ।
विंदुकिधौंमुखफेनन केकिधौंराजशिरीश्रवैमंगललाजनि ॥३४६॥
राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई ।
मानो प्रताप हुताशन धूम सो केशवदास अकाशन माई ॥

मंदिकै पंच प्रभूत किधौं विधि रेणुमयी नव रीति
दुःख निवेदन को भवभार्‌को भूमि किधौं ३५०

[दंडक छंद]

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केशोदास आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपनेहीं हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन को जियिकाऽति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिश दिशि जीति सेना रघुनाथ की॥ ३५१

[दोहा]

दिशि विदिशनि अवगाहि कै, सुख ही केशवदास।
बालमीकि के आश्रमहि, गयो तुरंग प्रकाश॥ ३५२॥

[दोधकछंद]

दूरहि ते मुनि बालक धाये।
पूजित बाजि विलोकन आये॥
भाल को पट्ट जहीं सब बाँच्यो।
बाँधि तुरंगम अयरख राँच्यो॥ ३५३॥

[श्लोक]

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णात्विमं बली॥ ३५४॥

[दोधक छंद]

घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी।
कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी॥
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो।
यों कहिकै धनुसायक साँध्यो॥
मारि भगाइ दिये सिगरे यों।
मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों॥ ३५५॥

लव शत्रुघ्न युद्ध

[धीर छंद]

योधा भगे बीर शत्रुघ्न आये।
कोदंड लीन्हे महा रोष छाये॥
ठाढ़ो तहाँ एक बालै बिलोक्यो।
रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो[1]॥ ३५६॥

[सुंदरी छंद]

शत्रुघ्न—बालक छाँडि दे छाँडि तुरंगम।
तोसों कहा करौं संगर संगम॥
ऊपर बीर हिये करुणा रस।
बीरहि विप्र हते न कहूँ यश॥ ३५७॥

[तारक छंद]

लव—कछु बात बड़ी न कहो मुख थोरे।

१—मोक्यों=(मोच्यो) छोड़ा।

लव सों न जुरी लवणासुर भोरे॥
छिजदोपन ही बल ताको सँहारयो।
मरिही जो रहो सो ,कहा तुम मारयो ॥ ३५८ ॥

[चामर छंद]

रामचंद्रु बाण तीनि छोड़िये। त्रिशूल से।
भाल में बिशाल ताहि लागिये। ते फूल से॥
लव—धात कौन रामतात गात तैं कि पूजिये।
कौन शत्रु तैं हरयो, जो नाम शत्रुहालिये॥ ३५९

[निशिपालिका छंद]

रोष करि बाण बहु भाँति लव छंडियो।
एक ध्वज सूत युग तीनि रथ खंडियो॥
शस्त्र दशरत्थ सुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरै॥ ३६० ॥

[तारक छंद]

रिपुहा तब बाण बहै कर लीन्हो।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हो॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री१।
मुरझाइ गिरयो धरणी। महँ छत्री॥ ३६१॥

[मोटनक छंद]

मोहे लव भूमि परे अबहीं।
जय दुंदुभि बाजि उठे तबहीं॥

१—पत्री=बाण।

भुव ते रथ ऊपर आनि धरे।
शत्रुघ्न सों यों करुणानि भरे॥ ३६२॥
घोड़ो तबहीं तिन छोरि लयो।
शत्रुघ्नहिं आनंद चित्त भयो॥
लैके लव को ते चले जवहीं।
सीता पहँ बाल गये तबहीं॥ ३६३॥

बालक— [झूलना छंद]

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग, सैन भगाइके तब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गो शर एक को भुव में गिस्रो मुरझाइ।
वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ॥ ३६४॥

[दोहा]

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भई अचेत।
मनों चित्र की पुत्रिका, मन क्रम बचन समेत॥ ३६५॥

[झूलना छंद]

सीता-रिपु हाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परैं करतार।
पति देवता सब काल तो लव जी उठै यहि बार॥
ऋषि हैं नहीं, कुश है नहीं लव लेइ कौन छुड़ाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ॥ ३६६॥

[दोहा]

कुश—रिपुहि मारि संहारि दल, यम ते लेउँ छुड़ाइ।
लवहि मिलैहैां, देखिहैा, माता तेरे पाँइ॥ ३६७॥

[सवैया]

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर[1] सो र
ढाहि दिये शिर रावण के गिरि से गुरु जात न जातन
मूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो
रावण को दल मत्तकरी सुर[2] अंकुश दै

[दोहा]

कुश की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप दिलो कि पतंग ज्यों, यदपि भयो पटु विघ्न॥ ३२९

[मनोरमा छंद]

रघुनन्दन को अवलोकतहीं कुश।
उर माँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश॥
ते गिरे रथ ऊपर लागतहीं शर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर॥ ३३०॥

[सुंदरी छंद]

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन।
भाजि गये तबहीं भट के गन॥
काढ़ि लियो जबहीं लव को शर।
कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर॥ ३३१॥

[दोहा]

मिले जो कुश लव कुशल सों, बाजि बाँधि तरमूल।
रणमहि ठाढ़े शोभिजै, पशुपति गणपति तूल॥ ३३२॥

१—बर=बट वृक्ष। २—बर=बल से। ३—सुर=अंकुश कार,। टेर।

[रूपमाला छंद]

यज्ञमंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को शुभ स्वर्ण की सँग बाल॥
आस पास ऋषीश शोभित शूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरणे युद्ध की सब गाथ॥ ३७३॥

[स्वागता छंद]

भग्गुल—बालमीकि थल बाजि गयो जू।
विप्र बालकन घेरि लयो जू॥
एक बांचि पट घोटक बाँध्यो।
दौरि दीह धनुसायक साँध्यो॥ ३७४॥
भाँति भाँति सब सैन सँहार्‍यो।
आपु हाथ जनु ईश सँवार्‍यो॥
अस्त्र शस्त्र तब बंधु जो धार्‍यो।
खंड खंड करि ताकहं डार्‍यो॥
रोष वेष वह बाण लयो जू।
इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू॥
काल रूप उर माँह हयो जू।
बीर मूर्छि तब भूमि भयो जू॥ ३७५॥

[तोमर छंद]

वह वीर लै अरु बाजि। जबहीं चल्यो दल साजि॥
तब और बालक आनि। मग रोकियो तजि कानि॥ ३७६॥

१—भग्गुल=भगेड़ ।

तेहि मारियो तुव बंधु। तव है गयो सब अंधु॥
यह बाजि लै अरु बीर। रण में रह्यो रुपि धीर॥३७७

[दोहा]

बुधि बल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम॥
काकपक्षधर बाल है, जीते सब संग्राम॥३७८॥

राम- [चतुष्पदी छंद]

गुणगण प्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रनरंता।
दशरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवणासुर को हंता॥
कोऊ है मुनिसुत काकपक्षयुत सुनियत हैं जिन मारे॥
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥३७६

[मरहट्टा छंद]

लक्ष्मण शुभलक्षण बुद्धि विचक्षण लेहु बाजि को शोधु।
मुनि शिशु जनि मारेहु बंधु उधारेहु क्रोध न करेहु प्रबोधु।
बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर।
देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत बीर॥३८०

[दोधक छंद]

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो।
कालहु ते अति भीम विशेख्यो॥
कुश—दोमें कहौ सो कहा लव कीजै।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजै॥३८१॥

लक्ष्मण सह लवकुश युद्ध

लव—बूझत हौ तौ यहै प्रभु कीजै ।
मो असु[1] दै वरु अश्व न दीजै ॥
लक्ष्मण को दल सिंधु निहारो ।
ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥ ३८२ ॥
कौन यहै घटिहैं अरि घेरे ।
नाहिन हाथ शरासन मेरे ॥
नेकु जही दुचितो चित कीन्हों ।
सूर बड़ो इषुधी[2] धनु दीन्हों ॥ ३८३ ॥
लै धनु बाण बली तब धायो ।
पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥
यों दोउ सोदर सैन सँहारैं ।
ज्यों वन पावक पौन विहारैं ॥ ३८४ ॥
भागत हैं भट यों लव आगे ।
राम के नाम ते ज्यों अघ भागे ॥
यूथप यूथ यों मारि भगायो ।
वात बड़े जनु मेघ उड़ायो ॥ ३८५ ॥

[सवैया]

अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचैं ।
त्यहिं वार न वार भई बहु वारन खड्ग हनै न गनै विरचैं[3] ।

१—असु=प्राण । २—इषुधी=तरकश । ३—विरचं=क्रुद्ध होते हैं ।

तहँ कुम्भ फटैं गजमोती कटैं ते चले बहु श्रोणित रोचि ५
परिपूरण पूर[1] पनारेन ते जनु पीक कपूरन की किरचैं ।।

[नाराच छंद]

भगे चपे चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै ।
भगे रथी महारथी गयंद वृन्द को गणै ॥
कुशै तबै निरंकुशै बिलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाइ कै बली बंध्यो सो लाज दाम को ॥ ३८७

[मौक्तिकदाम छंद]

कुश—न हौं मकराक्ष न हौं इंद्रजीत ।
बिलोकि तुम्हैं रण होहुँ न भीत ॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ ।
करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥ ३८८ ॥

लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति बात ।
बिलोकत हौं उपवीतहि गात ॥
इते पर बालवयक्रम[2] जानि ।
हिये करुणा उपजै अति आनि ॥ ३८९ ॥
बिलोचन लोचत[3] हैं लखि तोहिं ।
तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं ॥

१—पूर=पार। २—बालवयक्रम=बाल अवस्था। ३—लोचन=ललचाते।

क्षम्यों अपराध अजौं घर जाहु ।
हिये उपजाउ न मातहि दाहु ॥ ३६० ॥

[दोधक छंद]

हौं हतिहौं कबहूं नहिं तोहीं । तू बरु बाणन वेधहि मोहीं ।
बालक विप्र कहा हनिये जू । लोक अलोकन में गनिये जू ॥३६१॥

कुश—
[हरणी छंद]

लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ । यज्ञ वृथा प्रभु को न करो ॥
हौं हय को कबहूं न तजौं । पट्ट लिख्यो सोइ बांचि लजौं । ३६२।

[स्वागता छंद]

बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो । चर्म वर्म बहुधा तिन खंड्यो ॥
ताहि हीन कुश चित्तहि मोहे । धूमभिन्न जनु पावक सोहै ३६३
रोष वेष कुश बाण चलायो । पौनचक्र जिमि चित्तभ्रमायो ॥
मोह मोहि रथ ऊपर सोये । ताहि देखि जड़ जंगम रोये॥३६४॥

[नाराच छंद]

विराम[1] राम जानि कै भरत्थ सों कथा कहैं ।
विचारि चित्तमांझ वीर वीर वे कहां रहैं ॥
सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ विलुप्त ह्वै ।
अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन ह्वै ॥ ३६५ ॥

[रूपमाला छंद]

राम—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहां यहि बार ।
जाइ कै यह बात वर्णहु रक्षियो मुनिवार[2] ॥

१—विराम=देर। २—वार=बाल।

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ श्रौर अनाथ ।
देखिये कहँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तम गाथ ॥ ३९६

[सुंदरी छंद]

भगुल आइ गये तबही यहु ।
बार[1] पुकारत आरत रहु ॥
वे बहुभांतिन सैन सँहारत ।
लक्ष्मण तो तिनको नहिं मारत ॥ ३९७ ॥
बालक आनि तजैं करुणा करि ।
ये अति ढीठ भये दल संहरि ॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रण ।
वीर अनाथ भये बिन लक्ष्मण ॥ ३९८ ॥
जानहु जै[2] उनको मुनिबालक ।
वे कोउ हैं जगती प्रतिपालक ॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक ।
कै लवणासुर के हित लायक ॥ ३९९ ॥

भरत—बालक रावण के न सहायक ।
ना लवणासुर के हित लायक ॥
हैं निज पातक वृक्षन के फल ।
मोहत हैं रघुवंशिन के बल ॥ ४०० ॥
जीतहि को रणमांझ रिपुघ्नहि ।
को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि ॥

१—बार=द्वार । २—जै=जिन, मत

लक्ष्मण सीय तजी जबते बन।
लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥ ४०१ ॥
छोड़ोइ चाहत ते तब ते तन।
पाइ निमित्त करेउ मन पावन ॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि।
पूत भये तजि पाप समाजनि ॥ ४०२ ॥

[दोधक छंद]

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता ॥
दोष विहीनहि दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥ ४०३ ॥
हमहूं त्यही तीरथ जाइ मरैंगे।
सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥
वानर राक्षस ऋक्ष तिहारे।
गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे ॥
तालगि कै यह बात विचारी।
हो प्रभु संतत गर्व प्रहारी ॥ ४०४ ॥

[चंचरी छंद]

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले।
जामवन्त चले विभीषण और वीर भले भले ॥
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी ॥ ४०५ ॥

१—रोदसी=भूमि और आकाश। २—नृपता=राजाओं के समूह।

लव भरत युद्ध

[रूपमाला छंद]

जामवंत विलोकि कै रण भीमभू हनुमंत ।
श्रोण की सरिता बही सुअनंत रूप दुरंत ॥
यत्र तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप ।
टूटि टूटि परे मनों बहु वात वृक्ष अनूप ॥ ४०६ ॥
पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभिजै सुठि सूर ॥
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलिश्रोणित पूर ॥
ग्राहतुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विशाल ॥
चक्र से रथचक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल ॥ ४०७ ॥
केकरे कर बाहु मीन गयंदशुंड भुजंग ।
चीर चौर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग ॥
बालुका बहु भाँति हैं मणिमाल जाल प्रकाश ।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास ॥ ४०८ ॥

[दोहा]

बामबरण लघु वेष लघु, कहत रीझि हनुमन्त ॥
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनंत ॥ ४०९ ॥

[तारक छंद]

भरत—हनुमंत दुरंत नदी अब नाघी ।
रघुनाथ सहोदर जी अभिलाषी ॥

तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गयेजू।
अब नाँघहु काहे न भीत भयेजू॥ ४१० ॥

[दोहा]

हनुमान—सीतापद संमुख हुते, गये सिंधु के पार।
विमुख भये क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत यहीबार॥४११॥

[तारक छंद]

धनु बाण लिये मुनिबालक आये।
जनु मन्मथ के युग रूप सुहाये॥
करिबे कहँ शूरन के मद हीने।
रघुनायक मानहुँ द्वै वपु कीने॥ ४१२॥

भरत—मुनिबालक हो तुम यज्ञ करावो।
सु किधौं वर बाजिहिं बांधन धावो॥
अपराध क्षमौ सब आशिष दीजै।
वर बाजि तजौ जिय रोष न कीजै॥ ४१३॥

[दोहा]

बांध्यो पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिन काज प्रकाश।
रोष करेउ बिन काज तुम, हम विप्रन के दास॥ ४१४॥

[दोधक छंद]

कुश—बालक वृद्ध कहो तुम काको।
देहनि को किधौं जीवप्रभा को॥
है जड़ देह कहै सब कोई।
जीव सो बालक वृद्ध न होई॥ ४१५॥

जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ताकहँ शोक कहा करि कीजै॥
जीवहि विप्र न क्षत्रिय जानी।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनी॥ ४१६॥
जो तुम देहु हमैं कछु शिक्षा।
तौ हम देहिं तुम्हैं हय भिक्षा॥
चित्त विचार परै सोइ कीजै।
दोष कछू न हमैं अब दीजै॥ ४१७॥

[स्वागता छंद]

विप्र बालकन की सुनि बानी।
क्रुद्ध सूरसुत भो अभिमानी॥ ४१८॥
सुग्रीव—विप्र पुत्र तुम शीघ्र सँभारो।
राखि लेहि अब ताहि पुकारो॥ ४१९॥

लव के कटु वचन

[गौरी छंद]

लव—सुग्रीव कहा तुम सों रण मांड़ौं।
तो अति कायर जानि कै छाँड़ौं॥
बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो।
कहा रणमंडन मोसन आयो॥ ४२०॥

[तामर छंद]

फलहीन सो ताकहँ बाण चलायो।
अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो॥
तब दौरिकै बाण विभीषण लीन्हों।
लव ताहि विलोकतहीं हँसि दीन्हों॥ ४२१॥

[सुंदरी छंद]

आउ विभीषण तू रणदूषण।
एक तुहीं कुल को किलभूषण॥
जूझ जुरे जे भले भय जी के।
शत्रुहि आइ मिले तुम नीके॥ ४२२॥

[दोधक छंद]

देववधू जबहीं हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के डर आयो।
छुद्र सबै कुलछिद्र बतायो॥ ४२३॥

[दोहा]

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी, पत्नी मातु समान॥ ४२४॥
को जानै कै बार तू, कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ॥ ४२५॥

[तोटक छंद]

सिगरे जग मांझ हँसावत हैं।
रघुवंशिन पाप नशावत हैं॥
धिक तोकहँ तू अजहूं जो जिये।
खल जाइ हलाहल क्यों न पिये॥ ४२६॥
कछु है अब तोकहँ लाज हिये।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये॥
अब जाइ करीष[1] की आगि जरौ।
गर बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ॥ ४२७॥

[दोहा]

कहा कहौं हौं भरत को, जानत है सब कोय।
तोसो पापी संग है, क्यों न पराजय होय॥ ४२८॥
बहुत युद्ध भो भरत सों, देव अदेव समान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन बान॥ ४२९॥

राम-कुश संवाद

भरतहि भयो विलंब कछु, आये श्रीरघुनाथ॥
देख्यो वह संग्रामथल, जूझि परे सब साथ॥ ४३०॥

[तोटक छंद]

रघुनाथहि आवत आइ गये। रण मेँ मुनिबालक रूपरये॥
गुण रूप सुशीलन सों रण मेँ। प्रतिबिंब मनो निज दर्पण मेँ॥ ४३१॥

१—करीष=जगली कंडे, करसी।

[मधुतिलक छंद]

सीता समान मुखचंद्र विलोकि राम।
बूझ्यो कहां बसत हौ तुम कौन ग्राम॥
माता पिता कवन कौन्यहि कर्म कीन।
विद्याविनोद शिष कौन्यहि अस्त्र दीन॥ ४३२॥

[रूपमाला छंद]

कुश-राजराज तुम्हैं कहा ममवंश सों अब काम।
बूझि लीन्हेहु ईश लोगन जीतिकै संग्राम॥
राम-हौं न युद्ध करौं कहे विन विप्रवेष विलोकि।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि॥ ४३३॥
कुश-कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ।
बालमीक अशेप कर्म करे कृपारस भोइ॥
अस्त्र शस्त्र सबै दिये अरु वेद भेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत आजुलौं रघुराइ॥ ४३४॥

[दोधक छंद]

जानकि के मुख अक्षर आने। राम तहीं अपने सुत जाने॥
विक्रम साहस शील विचारे। युद्ध कथा कहि आयुध डारे ४३५
राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्यावो।
कै अपने बल मारि भगावो॥
वेगि बुझावहु चित्त चिता को॥
आजु तिलोदक देहु पिता को॥ ४३६॥

अंगद तौ अँग अंगनि फूले ।
पौन के पुत्र कह्यो अति भूले ॥
आइ जुरे लव सों तब लै कै ।
बात कही शत्रुघ्न कै कै ॥ ४३७

अंगद लव संग्राम

लव—अंगद जो तुम पै बल हो तो ।
तौ वह सूरज को सुत को तो ॥
देखत ही जननी जो तिहारी ।
वा सँग सोवति ज्यों बरनारी ॥ ४३८ ।

जादिन ते युवराज कहावे ।
विमल बुद्धि विवेक बहाये ॥
जीवत पै कि मरे पहँ जैहै ।
कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥ ४३९ ॥

अंगद हाथ गहे तरु जोई ।
जात तहीं तिल सो कटि सोई ॥
पर्वत पुञ्ज जिते उन मेले ।
फूल के तूल ते बाणन मेले ॥ ४४० ॥

बाणन बेधि रही सब देही ।
बानर ते जो भये अब सेही[1] ॥

१—सेही=स्याही नामक वन जन्तु, शल्लकी ।

भूतल ते शर मारि उड़ायो ।
खेल के कंदुक को फल पायो ॥ ४४१ ॥
सोहत है अध ऊरध ऐसे ।
होत बटा नत को नभ जैसे ॥
जान कहूं न इतै उत पावै ॥
गोवल चित्त दशों दिश धावै ॥ ४४२ ॥
बोल घट्यो सो भयो सुरभंगी ।
ह्वै गयो अंग त्रिशंकु को संगी ।
हा रघुनायक हौं जन तेरो ।
रक्षहु गर्व गयो सब मेरो ॥ ४४३ ॥
दीन सुनी जन की जब बानी ।
जी करुणा तब बाणन आनी ॥
छांड़ि दियो गिरि भूमि पर्योई ।
विह्वल ह्वै अति मानों मर्योई ॥ ४४४ ॥

[विजय छंद]

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै ।
भारे भिरे रणभूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै ।
रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै ।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खांयें मरे नग नाग मरे क ॥४४५॥

[दोधक छंद]

बानर ऋक्ष जिते निशिचारी । सेन सबै इक बाण सँहारी ॥
बाण बिधे सब ही जब जोये । स्यंदन में रघुनंदन सोये ॥४४६॥

[गीतिका छंद]

रण-ओर के सब शोश भूषण संग्रहे जे भले भले।
हनुमंत को अरु जामवंतहिं वाजि ज्यों ग्रसि लै चले॥
रण जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुश पाँ परे।
शिर सूंघि कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुवौ ...

सीता शोक

[रूपमाला छंद]

चीन्हि देवर को विभूषण देखि कै हनुमंत॥
पुत्र हौं विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत॥
बाप को रण मारियो अरु पितृभ्रात सँहारि।
आनियो हनुमंत बाँधि न आनियो मोहिं मारि॥ ४४८

[दोहा]

माता सब काकी करी, विधवा एकहि बार॥
मो से और न पापिनी, जाये वंशकुठार॥ ४४६॥

[दोधक छंद]

बाप कहाँ हति बापहि जैहो। लोक चतुर्दश ठौर न पैहो।
राजकुमार कहूँ नहिं कोऊ। जारज जाइ कहावहु दोऊ॥४५०

कुश—मो कहँ दोष कहा सुनु माता।
बाँधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता॥
हौं तुमहीं तेहि बार पठायो।
राम पिता कब, मोहिं सुनायो॥ ४५१॥

[दोहा]

मोहि विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम॥
जीवत छोंड़यो युद्ध में, माता कर विश्राम ॥ ४५२ ॥

[सुंदरी छंद]

आइ गये तबहीं मुनिनायक ।
श्री रघुनंदन के गुणगायक ॥
बात विचारि कही सिगरी कुश।
दुःख कियो मन में कलिअंकुश ॥ ४५३ ॥

[रूपवती छंद]

कीजे न विडंबन संतति सीते ।
भावी न मिटै सुकहूं जगगीते ॥
तू तो पतिदेवन की गुरु वेटी ॥
तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी ॥ ४४५ ॥

[तोटक छंद]

सिगरे रणमंडल मांझ गये ।
अवलोकतहीं अति भीत ।भये ॥
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम ।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥ ४५५ ॥

सीता राम सम्मेलन

[दंडक छंद]

श्रोणित सलिल नर वानर सलिलचर,
गिरि वालिसुत विष विभीषण डारे हैं।

चमर पताका गुड़ी बहुधा अनल सम,
रोमरिपु जामवंत केशव विचारे हैं।
बाजि सुरबाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचंद्र कुश लव,
जीति कै समरसिंधु साँचि कै सुधारे हैं॥ ५५६॥

[दोहा]

सीता-मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम।
तौ सब सेना जी उठे, देहि धरी न विराम[1] ॥ ५५७॥

[दोधक छंद]

सीय उठी सब सेन सभागी। केशव सोवत तें जनु जागी॥
स्यों सुत सीतहि लै सुखकारी। राघव के मुनि पाँयन पारी॥५५८

[मनोरमा छंद]

शुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ।
वर्षा वर्षैं सुर फूलन की तहँ॥
बहुधा विधि दुंदुभी के गण बाजत।
दिगपाल गयंदन के गण लाजत॥ ५५९॥

[रूपमाला छंद]

सुंदरी सुत सौं सहोदर वाजि लै सुखपाइ।
साथ लै मुनि वालमीकहि दीह दुःख नशाइ॥
राम धाम चले भले यश लोकलोक बढ़ाइ॥
भाँति भाँति सुदेश केशव दुंदुभीन बजाइ॥ ५६०॥

भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर ढारत जात।
चौंर ढारत हैं दुवौ दिशि पुत्र उत्तमगात॥
छत्र है कर इन्द्र के शुभ शोभिजे बहु भेव।
मत्तदंति चढ़े पढ़ैं जय शब्द देव नृदेव। ४६१॥

[दोधक छंद]

यज्ञथली रघुनंदन आये। धामनि धामनि होत बधाये॥
श्री मिथिलेशसुता बड़ भागी। स्यों सुत सासुन के पगलागी ४६२

[दोहा]

चारि पुत्र द्वै पुत्र सुत, कौशल्या तब देखि॥
पायो परमानंद मन, दिगपालन सम लेखि॥ ४६३॥

[रूपमाला छंद]

यज्ञ पूरण कै रमापति दान देत अशेष।
हीर नीरज चीर मानिक वर्षि वर्षा वेष॥
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि वासर राति॥ ४६४॥

[दोहा]

एक अयुत गज बाजि द्वै, तीनि सुरभि शुभवर्ण॥
एक एक विप्रहि दई, केशव सहित सुवर्ण॥ ४६५॥
देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक॥
मन भायो पायो सबन, कीन्हें सबन अशोक॥ ४६६॥

राज्य वितरण

अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समान
न्यारे न्यारे देश दै, नृपति करे भगवान ॥
कुश लव अपने भरत के, नन्दन पुष्कर तक्ष ॥
लक्ष्मण के अंगद भये, चित्रकेतु रणपक्ष ॥ ६

[भुजंगप्रयात छंद]

भले पुत्र शत्रुघ्न है दीप जाये ।
सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये ॥
सदा मित्रपोषी हनैं शत्रु छाती ।
सुबाहै बड़ो दूसरो शत्रुघाती ॥ ४६

[दोहा]

कुश को दई कुशावती, नगरी कोशलदेश ॥
लव को दई अवंतिका, उत्तर उत्तम वेष ॥ ४७० ॥
पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम ॥
तक्षशिला तक्षहि दई लई जीति संग्राम ॥
अंगद कहँ अंगदनगर, दीन्हों पश्चिम ओर ॥
चंद्रकेतु चन्द्रावती, लीन्हों उत्तर जोर ॥ २७ ॥
मथुरा दई सुबाहु को, पूरण पावननाथ ॥
शत्रुघात को नृप करयौ, देशहि को रघुनाथ ॥ ४७८

[तोटक छंद]

यहि भाँति सों रक्षित भूमि भई ।
सब पुत्र भतीजन बाँट दई ॥

सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये।
बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥ ४७३ ॥

राम कथित नीति शिक्षा

[चामर छंद]

बोलिये न झूठ ईठि[1] मूढ़ पै न कीजई।
दीजिये जो बात हाथ भूलिहू न लीजई ॥
नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को।
यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै[2] अमित्र को ॥ ४७४ ॥

[नाराच छंद]

जुवा न खेलिये कहूँ जुवान वेद रक्षिये।
अमित्रभूमि माहँ जै अभक्ष भक्ष भक्षिये ॥
करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये।
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये ॥ ४७५ ॥
वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्रमान[3] पारिये[4]।
असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिये ॥
कुदेव[5] देव नारि को न बालवित्त लीजिये।
विरोध विप्रवंश सों सो स्वप्नहू न कीजिये ॥ ४७६ ॥

[भुजंगप्रयात छंद]

परद्रव्य को तौ विषप्राय लेखौ।
परस्त्रीन सों ज्यों गुरुस्त्रीन देखौ ॥

१—ईठि=मित्रता। २—जै=जिन, मत। ३—पुत्रमान=बेटे की तरह।
४—पारिये=पालिबो ५—कुदेव=(कु+देव) भूमिदेव,ब्राह्मण।

तजौ काम क्रोधौ महा मोह लोभा।
तजौं गर्व को सर्वदा चित्त शोभा ॥ ४५५ ॥
यरौ संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा ॥
करौ साधु संसर्ग जो बुद्धिबोधा ॥
हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा।
अधर्मीन को देहु जै थाकभिक्षा ॥ ४५८ ॥
कृतघ्नी कुवादी परस्त्रीविहारी।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी ॥
सदा द्रव्य संकल्प को राखि लीजै।
द्विजातीन को आपुही दान दीजै ॥ ४५६ ॥

[सवैया]

तेरहमंडलमंडितभूतल भूपति जो क्रमही क्रम साधै
कैसेहु ताकहँ शत्रु न मित्र सुसेवकदास उदासन बाधै
शत्रु समीप परे तेहि मित्र से तासु परे जो उदास कै जोवै
विग्रह संधिन दाननिसिंधु लौं लै चहुँओरनि तौ सुख सोवै

[दोहा]

राजश्रीवश कसेहूँ, होइ न उर अवदात ॥
जैसे तैसे आपुवश, ताकहँ कीजै तात ॥ ४८१ ॥

Printed and published by Krishna Ram Mehta at the Leader Press, 14-A South Road Allahabad.